भारती की कविताएँ

भारती की कविताएँ

अनुवादिका .

श्रीमती आनन्दी रामनायन

संशोधक :

श्री युगजीत नवलपुरी

भूमिका-लेखक

श्री आर० पी० सेतुपिल्लै

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

Bharati Ki Kavitayen . Translation in Hindi from Tamil of select poems of Subramanya Bharati by Anandi Ramnathan Sahitya Akademi New Delhi (1966) Price Rs 5

प्राप्ति-स्थान :
साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन,
३५ फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली

मुद्रक :
राधा प्रेस,
गांधी नगर, दिल्ली-३१

मूल्य : पांच रुपये

भारती का काव्य-माधुर्य

देखने मे आता है कि ससार के सभी अग्रणी देश अपनी-अपनी मातृभाषा को ही प्रमुख स्थान देते है और उसका विशेष आदर करते है किन्तु एक जमाने मे तमिषनाड मे विद्वानो का विचार था कि विदेशी भाषाओ मे शिक्षित होना ही बुद्धिमत्ता का लक्षण है। इस कारण मातृभाषा का तिरस्कार उन्हे अनुचित नही लगता था।

सौभाग्य से आज की बदली हुई परिस्थितियो मे विद्वानो का वह दृष्टिकोण बदल गया है, नव उत्साह से प्रेरित होकर वे तमिष-जननी और जनता का यथोचित आदर-सम्मान करने के लिए नये सिरे मे प्रयत्नशील है।

तमिष भाषा के सौष्ठव मे भली भाँति परिचित कवि और विद्वान् तमिष-भाषा-प्रदेश—तमिषनाड की प्रशस्ति ममता-भरे प्रेमल शब्दो मे करते है। इस प्रदेश के गिरि-पर्वत, नद-नदियाँ, वन-उपवन सब-कुछ उन्हे तमिष के स्वरूप, तमिष-मय प्रतीत होते हैं। तभी तो यहाँ का पोदिय-मलै, जिसमे तमिष मुनि अगस्त्य का निवास माना गया है, कवियो के लिए तमिष-मलै के रूप मे ही दर्शन देता है।

उत्तर दिशा मे दक्षिण मे लका की ओर बढते हुए वानर । वीरो को लक्ष्य करके अपनी रामायण मे कवि कबन कहते है भरु

गुट-दुव

"दक्षिण मे तमिषनाड मे विशाल पोदिय-मलै को अपना निवा निपी की स्थान बनाकर अगस्त्य मुनि विराजमान है, क्योंकि मुनि द्वारा ने टमोलिए

नाम लेने की

तमिष भाषा उसी स्थान पर पालित-पोषित हो रही है। वानर वीरो! उस पर्वत को प्रणाम करके आगे बढ़ना।"

कंबन की इस उक्ति मे उनका तमिष-प्रेम बोलता है। पोदिय-मलै मे उत्पन्न होकर तिरुनेलवेली की ओर से बहती हुई उस प्रदेश को शस्य-श्यामल बनाती पोरुनै (ताम्रवर्णी) नामक 'तमिष' नदी को कंबन ने 'स्वर्ण प्रपूरित नीर बहाती पोरुनै' कहा है।

अपने भाषा-प्रदेश के चप्पे-चप्पे से ऐसा अनन्य प्रेम उत्तर कालीन तमिष कवियो मे भी परिलक्षित होता है। तमिष भाषा की सरलता को आत्मसात् करके कविता रचने वाले ऐसे ही कवि थे श्री सुब्रह्मण्य भारती। उनका 'तमिषनाडु-प्रशस्ति' अभिनव उत्साह और उल्लास जगाने वाला बड़ा सशक्त गीत है।

वे बड़े ही सुन्दर ढग से कहते हैं

'तमिष-नाडु' नाम - श्रवण से पुलकित हो उठता है अंतर!
बरस रहे हो कानो मे मानो मधुर सुधा के सीकर!
पितृभूमि की चर्चा यदि कोई पड़ती है कानों मे!
तो संचारित-सी हो उठती है नव्य शक्ति प्राणो मे!

माता को प्रेम-रूपा और पिता को साक्षात् पौरुष मानकर आदर देना तमिष परिपाटी है। इसीमे तमिष-नाडु को मातृभूमि के रूप मे स्मरण करते ही प्रेमानुभूति मे मग्न हो जाता है, पितृ-भूमि का विचार आते ही पौरुष जाग उठता है। इसी तथ्य को दर्शाते हुए भारती जिस रीति से पहले मातृ-प्रेम को और फिर पिता के पौरुष को व्यक्त करते है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

वैसे, अपने आराध्य भगवान् को मातृ-रूप तथा पितृ-रूप मे 'अम्मै-अप्पा' के संबोधन मे आदर देने की पद्धति इन्ही प्रेम तथा पौरुष के प्रतीको की आराधना पर आधारित है।

भव-बंधनों से मुक्त होकर परमानन्द-सुख प्राप्त करने की कामना लिये अपने आराध्य से विनती करने वाले तमिष-सन्त तायुमानवर भी कहते हैं

अम्मैये ! अप्पा ! ओप्पिला मणिये !
(माता ! पिता ! अनुपमित मणि हे !)

यहाँ माता को पहला स्थान दिया जाना द्रष्टव्य है।

कहने का तात्पर्य यह है कि तमिष-नाड पहले हमारी मातृभूमि है, बाद में हमारी पितृ-भूमि यही उदात्त वृत्ति सच्चे हृदय में सेवा-रत लोगों की रहती है, और यही भारत से सच्चा प्रेम रखने वाले तमिषों की भी रहती है।

माँ-तमिष-भारती के प्रति हमारी भक्ति यदि सच्ची है तो उस माता के सुधी बच्चों का भी श्रद्धापूर्वक सम्मान करना हमारा धर्म है। काव्य-सौष्ठव से पूरित रामायण के रचयिता महाकवि कंबन का अभी समुचित आदर नहीं हुआ है। अनन्य प्रतिभावान अपने तिरु-वल्लुवर को भी तमिष-नाड ने भली भाँति नहीं समझा है। अन्यान्य सुख-सम्पत्तियों की तुलना में तमिष साहित्य को ही महान् सम्पत्ति समझकर युवावस्था में ही सन्यास ग्रहण करके 'सिलप्पदिकारम्'[1] की

---

[1] महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' के रचयिता इलंगो सन्यासी थे। पूर्वाश्रम में वे चेरवंशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। इतिहास प्रसिद्ध चेर चेंगुट्टुवन के वे छोटे भाई थे। उनके सन्यास ग्रहण करने के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसिद्ध है। बचपन में दोनों भाई चेंगुट्टुव और इलंगो को देखकर किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि चेंगुट्टुव की अपेक्षा इलंगो में ही चक्रवर्ती बनने के लक्षण अधिक प्रबल हैं। ज्योतिषी की बात सुनकर राजगद्दी के सहज अधिकारी चेंगुट्टुव का मन क्षुब्ध हुआ। छोटे भाई इलंगो भैया का मन ताड़ गए। ज्योतिषी की बात झूठी साबित हो और राज्य का उत्तराधिकारी चेंगुट्टुव ही बने इसीलिए उन्होंने संसार में प्राप्त सब प्रकार का सुख वैभव त्यागकर सन्यास लेने की

सृष्टि करने वाले इलगो की महत्ता से अभी हम अपरिचित हैं, तमिप भाषा मे पाये गए दोष को अपने ही ऊपर आया कलक मानकर तन-मन से उत्पीडित होने वाले 'मणिमेखला-काव्य' के रचयिता शात्तनार[१] की महत्ता को हमने नही पहचाना है। 'तीसरा नेत्र खोलते हो तो क्या, मैं दोष को दोष कहकर ही रहूँगा'—त्रिलोचन भगवान् शकर के ही सम्मुख यह निर्भीक वाणी बोलने वाले भाषा-प्रवीण वाग्सिद्ध कवि नक्कीर[२] का हम समादर नही कर पाए है। मुत्तमिप के नाम मे विश्रुत

प्रतिज्ञा की। चेगुट्टुव का मन शान्त हो गया। सन्यासी इलगो साहित्य-सेवी बन गए और तमिप को अमर काव्य 'शिलप्पदिकारम्' भेंट चढाया।

१ शात्तनार और इलगो समकालीन थे। आयु मे शात्तनार अवश्य इलगो से बडे होंगे। इलगो ने 'शिलप्पदिकारम्' रचा तो शात्तनार ने उसके उत्तरार्ध के रूप मे 'मणिमेखला' नामक काव्य की सृष्टि की। कवि शात्तनार के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि काव्य रचनाओ मे वे किसी भी प्रकार का दोष सहन नहीं कर पाते थे। रचनाएँ सुनते समय या स्वय ताडपत्रो मे कील से कविताएँ अकित करते समय कहीं कोई दोष आ जाता तो असहनीय दुःख मे वे उसी कील से अपने घुटे हुए सिर पर घाव कर लेते। बार बार इस तरह घाव करते रहने के कारण उनके सिर के घाव कभी भरने ही नहीं थे।

२ कवि नक्कीर तमिप के सघकाल के एक प्रबल कवि थे। अपनी विद्वत्ता और अद्वितीय प्रतिभा के कारण अपने समय के तमिप सघम में उनका एकछत्र अधिकार था। पाड्य राज तक उनके आगे नतमस्तक रहता था। सघम साहित्य के अतर्गत लेने योग्य कविताओ का परीक्षण, निरीक्षण करना, उन्हे स्वीकारना या अस्वीकारना उन्हींकी इच्छा पर रहता था।

एक दिन पाड्यराज के मन मे एक अजीब सन्देह पैदा हुआ कि उसकी महारानी के केश मे से आने वाली सुगन्ध उनके लगाये गए सुवसित तेल तथा पुष्पादि की है या महारानी के केश की अपनी नैसर्गिक सुगन्धि भी हो सकती है। महाराज को असन्तुष्ट कर देने के डर से जब किसी ने बात नही बतलाई तो राजा ने यह घोषणा की कि जो भी उसका सन्देह दूर करेगा उसे स्वर्ण-मुद्राएँ भरी थैली भेंट मे मिलेगी। धर्मी नामक अपने भक्त पर भगवान् शकर की कृपा-दृष्टि पडी और उन्होने स्वय एक कविता लिखकर धर्मी को

त्रिविध तमिष पद्य, गद्य और नाटक—इन तीनों की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले श्रेष्ठ कवियों तथा प्रतिभायुक्त कवयित्रियों को अभी हमने अपने मन-मन्दिर में स्थान नहीं दिया है।

अन्य देशों में कवियों और विद्वानों को दिए जाने वाले सम्मान और प्रतिष्ठा का एक बार स्मरण करके यहाँ तमिषनाड में तमिष साहित्यकारों को प्राप्त होने वाले तिरस्कार और अपमान पर भी विचार करें तो विदेशियों की उदारशीलता के आगे अपनी सकीर्ण बुद्धि स्पष्ट लक्षित होगी। अज्ञान की इस गहरी नींद में हम जिस दिन जगें और तमिष के समुचित आदर-सम्मान के लिए प्रस्तुत हों वही दिन तमिषनाड का मगल दिवस माना जायगा।

तमिष के तीन महाकवि— (कंबन, तिरुवल्लुवर और इलगो)

कविता सच्चे कवियों के हृदय-स्रोत से फूट पड़ने वाले उत्साह और उल्लास में सहज ही जन्म लेने वाली वस्तु है। बिना किसी आभास के

राजसभा में भेज दिया। कविता में भगवान् शकर ने अपनी पार्वती के अलक-भार के चारों ओर भौंरों के मँडराने का वर्णन करके उत्प्रेक्षा की कि भौंरे देवी के केशों की नैसर्गिक सुगन्धि से आकृष्ट हुए हैं।

कविता पढ़कर नक्कीर ने उसे इस कारण से अस्वीकार कर दिया कि उसका वर्णन यथार्थ के विरोध में है। स्त्रियों के केश नैसर्गिक रूप से सुन्दर काले घने हो सकते हैं, किन्तु उनमें नैसर्गिक सुगन्धि की कल्पना नहीं हो सकती यह नक्कीर का तर्क था। बड़ा भारी उपहार पाने की आशा से आये धर्मी को निराश होकर अपने आराध्य के पास लौटना पड़ा। अपनी रचना की नक्कीर द्वारा अवज्ञा हुई जानकर भगवान् शकर स्वय राजसभा में उसी कविता को लेकर उपस्थित हुए। भगवान् को प्रत्यक्ष देखकर भी नक्कीर अपने मत पर डटे रहे। त्रिलोचन नक्कीर की भर्त्सना करते हुए अपना तीसरा नेत्र खोलने का उपक्रम करने लगे। किन्तु हठी नक्कीर ने स्थिर स्वर में कहा—'तीसरा नेत्र दिखाने से क्या हुआ, दोष तो दोष ही रहेगा।'

इस प्रकार गा उठने वाले कवि समार मे बहुत थोडे हुए है। किन्तु ऐसे ही सुकृती कवियो की वाणी मे मननीय और पठनीय शाश्वत मानव-सत्य दीप्त होता है। माधुर्य और सौन्दर्य शब्दो मे उभरकर आते हैं। तमिषनाड के सुब्रह्मण्य 'भारती' इसी कोटि के वाग्सिद्ध कवि थे। तमिषनाड का सौभाग्य है कि उसके ताम्रवर्णी नदी-प्रदेश मे उनका जन्म हुआ। तमिष के अतिरिक्त सस्कृत तथा अग्रेजी का समुचित ज्ञान प्राप्त करने पर भी अन्तस् की बलवती प्रेरणा के आगे झुककर उन्होने तमिष भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

प्राचीन काल के अपने गौरवमय इतिहास मे सम्पन्न तमिष-नाड की शक्ति और तेजस्विता को, समृद्धि और ऐश्वर्य को, वाणिज्य-व्यवसाय को, वहाँ की नद-नदी, गिरि-पर्वत, वन उपवन आदि एक-एक वस्तु को भारती ने अपनी कविता का विषय बनाया है और उनका गुण-गान किया है। तमिषनाड के प्रमुख शासको के भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे बहने वाली विशेष नदियो को—जैसे चोष देश की सुजला नदी कावेरी, पल्लवो से शासित भूमि तोण्डैनाड की शोभा बढाने वाली 'पालारु' या पयस्विनी नदी, 'कवियो के कठ बनी' पाड्य देश की वैगई नदी—आदि को तमिषनाड की शोभा बढाते हुए कल-कल कर बहती देखकर भारती मुग्ध हो जाते हैं। तमिष-नाड की प्रकृति के बाद कवि को उसकी ज्ञान-गरिमा, विद्या-सम्पन्नता याद आती है और साथ ही उसे स्मरण आते है वे स्वनाम-धन्य कवि जिनकी प्रतिभा और कृतियो ने इस देश को अमिट गौरव प्रदान किया है।

कवि के इन शब्दो को देखिए

विद्या-विश्रुत नू, 'विद्या-विशिष्ट' गुण विशिष्ट पदवीधर
कवि कम्बन् की जननी जन्मभूमि होने का गर्वकर

गौरव-पद है जिसका , साहित्यिक रस-सौरभ चेतोहर
जिसका जग-भर मे फैला है, वह तमिष-नाडु अपना है ।

विद्या-सम्पन्न तमिपनाड मे कवन का जन्म हुआ, उसने अमर महाकाव्य रामायण की सृष्टि की, जिससे तमिपनाड का नाम उज्ज्वल हो गया, कवन स्वय विद्याविशिष्ट' की उपाधि से यशस्वी हो गए। तमिपनाड को, उसके साहित्य को अलकृत करने वाले अमर काव्य के रचयिता स्वनाम-धन्य कवि कवन का स्मरण तमिपनाड की प्रशस्ति मे उपयुक्त ही तो है ।

यह भी तमिपनाड का ही सौभाग्य था कि ससार मे मानव धर्म का दिग्दर्शन कराने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि तिरुवल्लुवर ने भी उसकी गोद मे जन्म लिया । इस बात को भारती गर्व के साथ घोषित करते है :

तिरुवल्लुवर-जैसा रत्न-दान करके जिसने उपकृत
निखिल विश्व को कर लिया अपना, स्वय को यशोमडित ;
जिसके वक्षस्थल पर मुक्तादल की माला बन शोभित
सिलप्पदिकारम् है मनोहर, वह तमिषनाडु अपना है ।

ज्ञान के धनी तिरुवल्लुवर कई शताब्दियो पहले इस देश मे प्रकट हुए थे । ससार मे मानव सुखी रहकर सुचारु जीवन-यापन करे, इस हेतु उन्होने एक उज्ज्वल आदर्श-पथ का मार्ग-दर्शन कराया, फलस्वरूप विश्व-विश्रुत कवियो मे वे अपने ढग के अकेले कवि हो गए हैं । जन्म मे दक्षिण भारतीय होने पर भी तिरुवल्लुवर सभी देशो की सम्पत्ति है । उनकी धर्म-वाणी यद्यपि पहले-पहल तमिष भाषा मे ही प्रकट हुई फिर भी उसमे सभी भाषा-भाषियो द्वारा अपनाने योग्य सर्व-स्वीकार्य जीवन-तत्त्व-विवेचन है । किसी भी विशेष धर्म की ओर से पिटी-पिटाई नीति पर न चलकर जग की ओर इसमे जीवन-यापन करने वाले मानव-समुदाय की स्वाभाविक गति-विधि, क्रिया,

विचार आदि परखकर शाश्वत मानव-धर्म की स्थापना करने वाले तिरुवल्लुवर विश्व में अमर है। इस सुधी कवि को जन्म देने वाले तमिषनाड को भारती यशान्वित देखते हैं और उसकी मुक्त कंठ से प्रशस्ति गाते हैं।

तमिष की साहित्य-संपत्ति को चेर देश की सुसम्पन्नता से भी विशिष्ट मानकर, साहित्याध्ययन हेतु युवावस्था में ही सन्यास ग्रहण करने वाले तमिष-कुल-दीपक 'इलगो' थे। उनके द्वारा रचित महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' के काव्यामृत का भूरि-भूरि पान करके मुग्ध होने वाले भारती मातृभूमि के यशोगान में हर्षित स्वर में उसका उल्लेख करते हैं

जिसके वक्षस्थल पर मुक्तादल की माला बन शोभित
सिलप्पदिकारम् है मनोहर, वह तमिषनाडु अपना है।

इस तरह की प्राचीन गरिमा में सम्पन्न तमिषनाड में जन्म लेकर भी, अपनी मातृभाषा की महत्ता और माधुर्य से सर्वथा अनभिज्ञ रहकर व्यर्थ ही समय गँवाने वाले आधुनिक तमिष-भाषी जनता की मानसिक दशा देखकर भारती व्यथित होते हैं।

बड़ा परिश्रम करने के बाद, हमारे पूर्वजों ने ढूँढकर जो मोती पाये वे आज गर्त में छिप पड़े हैं, दूध रखने की हाँडी को जैसे दूध की हाँडी ही कहते हैं, चाहे उसमें दूध हो या न हो उसी प्रकार तमिष-परम्परा में आने के नाते हमें भी अन्य देशवासी तमिष-भाषी ही कहते हैं। किन्तु हमारी यह दशा है कि हम मुँह के रहते हुए भी गूँगे हैं, आँखों के होते हुए भी अंधे हैं, कानों के रहने पर भी बहरे हैं। हम जैसे नादान तमिष-भाषियों से भारती करुणार्द्र होकर निवेदन करते हैं

ओ पामर पशु का जीवन जीने वालो,
ओ जग-भर के निंदा-पात्रो, नामर्दों,

ओ निस्सत्त्वो, यह कहना कि 'तमिष-भाषी
हम हैं' उचित कहाँ तक होगा ?—उत्तर दो !
भाषा यह मधु-मधुर उपेक्षित ही न रहे,
तमिष-माधुरी से जग-भर परिचित हो जाय,
तमिष भाषियो, ऐसी कोई युक्ति करो,
तमिष-भाषियो, ऐसा कोई करो उपाय !

सरस तमिष की प्रकृति-गत विशेषता को तमिष-भाषी स्वयं समझें और रस लें। तमिष की एक प्राचीन उक्ति है—'जो सुख हमने पाया, उसे सारा जग पावे—इसीका अनुकरण करके मधुर तमिष का सब जगह प्रचार और प्रसार किया जाय। घर-घर तमिष निनादित हो, गली गली तमिष का नारा हो, शहर-भर मे तमिष घोषित हो, देश-भर मे तमिष की गूँज हो—इस प्रकार तमिष का जयनाद महानाद के रूप मे सर्वत्र उभरे, यही भारती की प्रबल कामना थी।

विद्या-विवेचन

एक अंग्रेजी कवि का कथन है कि सुन्दर वस्तु हमेशा आनन्द देने वाली होती है। नेत्राकर्षक सौन्दर्य को तथा चित्ताकर्षक बुद्धि-विलास को दैवी प्रतीक मानकर उनकी उपासना करने का श्रेय भारतवासियो को है। सौन्दर्य को श्री देवी के रूप मे तथा ज्ञानप्रद विद्या को सरस्वती स्वरूप मे मानकर हमारे पूर्वजो ने अपनी श्रद्धा प्रकट की। विद्या-देवी, श्वेत-पद्मासना सरस्वती की भारती ने जिस ढग मे प्रशस्ति गाई है वह अपने मे अनूठी है।

वेदो के अध्येता ब्राह्मण, वीरता दिखलाने वाले क्षत्रिय, धनार्जन मे लगे वैश्य, कठोर परिश्रम करने वाले किसान और मजदूर—सबकी आराध्य देवी एक-मात्र सरस्वती ही है। मानव के हृदय-कमल मे विराजती हुई, ज्ञान से भी परे रहने वाले ज्ञान-तत्त्व के रूप मे ज्ञेय

पथ निवारित करके श्रेय-पथ दिखलाने वाली देवी सरस्वती है । ऊँच-नीच, राजा-रंक, बाल-वृद्ध-जैसे किसी भी भेद को न मानकर, 'जन्म-से किसी भी जाति का हो, कोई हो', सभी ज्ञानार्थियों को अपने निकट आने का आह्वान देने वाली देवी सरस्वती है ।

ऐसी महिमामयी देवी को वाग्सिद्ध कवि अपनी अमर वाणी से अभिनन्दित करते हैं । पढ़े-लिखे ज्ञानाकांक्षी लोग प्रतिवर्ष नवरात्रि के उत्सव में पुस्तकों को सजाकर उसमें इस देवी का आवाहन करते हैं, सुगन्धित पुष्पों से पूजा करते हैं और हल्दी-कुंकुम बाँटते हैं । इस पूजा के सम्बन्ध में भारती के शब्द देखिए

तमिष-नाडु-वासी तुझको पूजें मिल-जुलकर
तेरी पूजा की विधि सरल नहीं, – कुछ दुष्कर ।
मंत्रोच्चारण करके, पुस्तक पर पुस्तक धर,
चंदन-पुष्पाक्षत - पूजन पूजाडंबर भर ।

साल में एक बार विद्या की प्रतीक बनी पुस्तकों को सजाकर रखना, उन पर पुष्प-हार पहनाना और चंदन आदि लगाकर मन्त्रोच्चार-पूर्वक वन्दना कर देने मात्र से सरस्वती देवी की पूजा संपन्न हुई समझना उचित नहीं है । समझदार लोग केवल 'पुष्प फल तोय' देने से विद्यादेवी को सन्तुष्ट नहीं मानेंगे तो फिर वाणी की आराधना किस प्रकार की जाय ? भारती कहते हैं कि तमिष-नाड के घर-घर में विद्या का प्रकाश होना चाहिए । गली-गली में पाठशालाएँ होनी चाहिएँ । नगर-नगर में विद्यालय बढ़ने चाहिए । शिक्षा-शून्य लोग जहाँ बसते हों वैसे नगरों को भस्मसात् कर देना चाहिए । इस रीति से अज्ञान को मिटाकर उसका नाश करके सब कहीं विद्या-कला का दैवी प्रकाश जगमगा दें तभी सरस्वती के कृपा-पात्र बनने के लिए की गई हमारी पूजा सार्थक हो सकती है ।

आगे भारती कहते है कि धर्म-नीति-विशारदो से निर्दिष्ट धर्म-कार्य जितने है, उनमे निरक्षर लोगो को शिक्षित करना ही, उनके मत मे, सर्वश्रेष्ठ धर्म है

> सुफला तरु-वाटिका सुजल सर, अन्न-सत्र मठ,
> मदिरादि - निर्माण, दान . ये पुण्य धर्म हठ !
> ये सब यश के कृत्य, किन्तु है पुण्य पुण्यतर
> करना शिक्षित उनको, जो हैं निपट निरक्षर !

प्राचीन तमिप की एक मननीय सूक्ति है 'अक और अक्षर आंख बराबर'। एक और पुरानी उक्ति है जो सुशिक्षित लोगो को ही मनुष्य वर्ग की कोटि मे रखती है और शिक्षा-शून्य जन को पशु की सज्ञा देती है। तमिप-सत ज्ञानसबदर का कहना है कि पूज्य व्यक्ति वह है जो शिक्षित हो और बहुश्रुत भी हो। फलत यह कहने की आवश्यकता नही कि शरीर-पोषक अन्नदान-मठो की अपेक्षा आत्मा का उन्नयन करने वाले विद्यालय विशिष्ट होते है। यदि हम इस सत्य को समझ लेगे कि ज्ञानी के लिए कामधेनु के समान रहने वाला प्रभु अज्ञानी के मन मे बसता ही नही, तब देवालयो के निर्माण के पहले विद्यालयो की स्थापना के कार्य को प्रधानता देने की बात भी सहज स्पष्ट हो जायगी। यही कारण है कि निरक्षर को शिक्षित करने के धर्म-कार्य को भारती ने अन्य धर्मो की अपेक्षा हजार गुना श्रेष्ठ बतलाया है। देश-भर मे विद्यालयो की स्थापना करके विद्या का प्रसार करके ही हम विद्या-देवी को प्रसन्न करने वाली अपनी आराधना को सफल मान सकते ह। तभी विद्यालयो मे जाकर अक और अक्षर सीखने वाले विद्यार्थियो के सम्मुख 'वीणा-वरदड-मडित करा' सरस्वती का मुख-कमल प्रकाशमान होगा।

पंडार गीत (साधुओ के गीत)

कई शताब्दियो के पहले ही तमिप-नाड ने इस सत्य को पहचान

लिया था कि सैन्य-बल से आत्म-बल बड़ा है। प्राचीन तमिल के भक्तों व सन्तों के जीवन-चरित्रों से पता चलता है कि देश पर हुकम चलाने वाले महाराज की प्रबल सेना को भी पराजित करने की सामर्थ्य उन आत्मबली वीरों में थी। शैव-धर्म की स्थापना तमिल नाडु में करने वाले तीन मुख्य भक्तों में एक थे 'तिरुनावुक्करशर', जो अप्पर के नाम से विख्यात हुए। इस सन्त के जीवन और व्यक्तित्व से भारती अत्यधिक प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। बारह सौ वर्ष पहले पाण्ड्यराज को ललकारते हुए अप्पर ने जो घोषणा की कि राज-तेज को आत्म-तेज से जीता जा सकता है वही सशक्त वाणी भारती के हृदय में घर कर गई और उनको प्रेरणा देने लगी।

इस संसार में पराक्रमी वीर वे होते हैं जिनके पास अपने भुज-बल के साथ पर्याप्त सैन्य-बल भी हो। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में अहंभाव और अभिमान-भरे अलेक्जेण्डर, नेपोलियन आदि वीरों की कोटि में रखे जाकर समादृत हैं। किन्तु तिरुनावुक्करशर की वीरता भुज-बल और सैन्य-बल से भी महान् आत्म-बल से प्रेरित थी। जैन धर्म को छोड़कर जब उस वीर-पुरुष ने शैव-धर्म को अपनाया तब देशस्थ शासक, जो स्वयं जैन था, रुष्ट हो गया। स्वधर्म छोड़कर परधर्म अपनाने के अपराध में तिरुनावुक्करशर को दण्ड देने के हेतु राजा ने सैनिकों द्वारा उन्हें बुलावा भेजा। राज-सैनिक राजाज्ञा की आड़ लेकर अप्पर को धमकियाँ देने लगे। किन्तु अप्पर किंचित् भी भयभीत न हुए। सैनिकों के हाथ में शस्त्र देखकर भी वे विचलित न हुए, वरन् उनको ललकारते हुए गा उठे

"हम किसी की प्रजा नहीं
मृत्यु से हम डरते नहीं"

यही वह वीर-गान है, जिसने भारती का मन मोह लिया। अपने को अक्सर भय दिखाने वाली 'माया' की निंदा में भारती ने जो पद

गाया है उसमे तिरुनावुक्करशर के वीर हृदय का आसरा कैसे लिया गया है, देखिए

'मै न वशवद, मै न प्रजा' —
विशद वचन यह भूल न जा, हे माये !
फिर मै क्यो होऊँ भयवश्य ?—
चूर्ण करूँगा तुझे अवश्य, हे माये !

भारती द्वारा रचित वीर गीतो मे सर्वश्रेष्ठ कहलाने योग्य है— 'भय नही है' की टेक से शुरु होने वाला पडार-गीत (साधुओ का गीत)।

उसमे आने वाली ये पक्तियाँ देखिए

मनुज - माँस - मालिनी अनी है
जिसकी, तर्जो शूल वही है,—
भीति नही है, भीति नही है !
भीति नाम की कोई वस्तु नही है !

इन्हे तिरुनावुक्करशर के सामने राजाज्ञा को लेकर आ डटे शूल-शस्त्रधारी सैनिको की ओर इगित करने वाली पक्तियाँ माने तो अनुचित नही जान पडता। तिरुनावुक्करशर को और भी यातना देने के उद्देश्य से राजा ने उन्हे चूने की भट्टी मे धकेलने की आज्ञा दी। किन्तु सत के मन की निराली सात्विकता ने धधकती भट्टी की ज्वाला पर विजय पाई। तिरुनावुक्करशर की उस मन स्थिति मे प्रकट गीत यह है

अनवद्य वीणा, साँझ, चन्द्रमा
मलयानिल, निखरा वसत
गुनगुनाते भौंरे - गुन-मर—
इन जैसी तात - ईश
चरण युगल छाया है।

सात दिन तक चूने की भट्टी में रहने पर भी अप्पर का बाल बाँका न हुआ। फिर भी उनकी महत्ता को राजा ने नहीं पहचाना। कई दिन से भूखे अप्पर को भोजन देने के बहाने उसने विष-मिला अन्न खिलाया। राजा के आज्ञाकारी सेवक मीठी मीठी बातें करते हुए अप्पर को अन्न खाने का आग्रह करने लगे। प्राणामृत माने जाने वाले अन्न में विष मिलाकर लाने वाले उन लोगों को अप्पर ने शत्रु नहीं मित्रवत् माना और उनके दिए अन्न को प्रसन्न-मुख खा लिया। इस प्रकार शत्रु द्वारा खिलाये गए विष को भी मित्र के दिए प्रीति-भोज के समान मानने वाले तिरुनावुक्करशर तिरुक्कुरल की इस सूक्ति के उदाहरण-स्वरूप बन गए हैं

विष पिलाये जाने पर भी
जान - बूझकर पी जाते
पर - हित - कामी जन।

'तिरुनावुक्करशर' की करामात को तिरुवल्लुवर के विचार से मिला कर भारती गाते हैं

स्वजन दे रहा यदि विष ही है,
पी लेने में भीति नहीं है।
भीति नहीं है, भीति नहीं है।
भीति नाम की कोई वस्तु नहीं है।

विष पिलाकर भी नावुक्करशर के जीवन का अंत करने में जब सफलता नहीं मिली, तब राजा ने दूसरा उपाय सोचा। उसने मदमत्त हाथी-तले उस सन्त को रौंद दिये जाने की आज्ञा दी। जैसे कि कोई पर्वत उठकर चला आ रहा हो, वैसे ही उन्मत्त हाथी अप्पर की ओर बढ़ा। पर जटा-जूट धारी भगवान् के कृपा-पात्र बने भक्त को कैसे ? अप्पर गा उठे

हमें डर नहीं किसी से,
न डरा सकेगा कोई भी—

हिंमक हाथी ने नावुक्करशर को रौंद देने के स्थान पर, उनकी परिक्रमा करके अपनी अञ्जलि अर्पित की और वहाँ मे चल दिया। उन्मत्त हाथी को ललकारते हुए नावुक्करशर ने निर्भयता की जो वाणी गुंजाई वही भारती की रचना 'भय नही है' की टेक वनी है।

यह हमेशा देखा गया कि मैन्य-वल और अधिकार के घमड मे राजा लोग, मसार-चक्र की धुरी वने वन्दनीय सत्पुरुषो को अकिंचन मानकर उन्हे कई तरह मे अपमानित करते है। तिरुनावुक्करशर को नाना प्रकार मे सताने वाला पल्लवराज भी इसका अपवाद नही था। ससार की इम रीति को पहचानने वाले भारती भी इसलिए गाते है

जगती यदि दुर्-दुर्, करती है
तुच्छ मानकर, भीति नही है!
भीति नही है, भीति नही है!
भीति नाम की कोई वस्तु नहीं है!

अनवद्य एक परम मत्ता मात्र के अधीन अपने को समझने वाले महापुरुप मसार की वस्तुओ को कुछ नही गिनते। धरती और आकाश अपने स्थान से डिग जायँ, मूर्य और चन्द्र अपनी दिशाएँ वदल ले, किन्तु उनका मन कभी विचलित नही होता।

चाहे गगन डोले, पृथ्वी ही डिग जाये
जनवद्य 'सत्ता'धीन-जन को उसमे क्या?—

अप्पर के इमी तेवार-पद से प्रेरणा लेकर भारती अपनी सरल किन्तु सवल शैली मे कहते ह

भले गाज सिर पर गिरती है
या कि टूटती नभस्थली है,—
भीति नही है, भीति नहीं है!
भीति नाम की कोई वस्तु नही है!

भगवान् ने चाहा कि तिरुनावुक्करशर की महत्ता को सारा जग जाने। इसलिए उन्होंने स्वर्ग की अप्सराओं को अप्पर के पास भेजा और उनके संयम की परीक्षा ली। अप्सराएँ उस स्थान पर जाकर कटाक्ष-पात करते हुए नृत्य करने लगीं जहाँ नावुक्करशर खुरपी लेकर घास निराते थे। शूल से भी तीक्ष्ण उनके कटाक्ष देखकर अप्पर किंचित् भी अस्थिर नहीं हुए अपनी इंद्रियों का संरक्षण संयम रूपी शस्त्र से जो उन्होंने कर लिया था। अप्सराएँ परास्त होकर लौट गईं। भारती की ये पंक्तियाँ उक्त घटना का स्मरण दिलाती हैं

खरकटाक्ष कामिनी तुली है
तपोभंग पर!—भीति नहीं है!
भीति नहीं है, भीति नहीं है!
भीति नाम की कोई वस्तु नहीं है!

सारांश यह है कि भारती का यह निर्भय गान शैव-मत तिरुना-वुक्करशर (अप्पर) के निर्भय जीवन और उनकी निर्भीक वाणी का पद-पद में परिचय देता है और यह सिद्ध करता है कि भारती को उस मत के व्यक्तित्व और साहित्य ने अत्यधिक प्रभावित किया है।

तमिष माता का अभिनंदन

भारती की दृष्टि में तमिष भाषा-प्रदेश दिव्यभूमि-सम वन्द्य है। एक कथा है कि वेदों की विनती भी अनसुनी करके भगवान् विष्णु तमिष के पीछे हो लिए। उत्तर और दक्षिण की भाषाओं की सीमा में अवस्थित वेंकटगिरि में वे जा बसे और वहीं से तमिष की देख-रेख करने लगे। नील तरंगों के सागर तट पर तपस्या करती हुई खड़ी कुमारी भी अगाध समुद्र को आगे बढ़ने से रोकती हुई-सी हस्तमुद्रा लिये तमिष-प्रदेश का संरक्षण कर रही है। इनके अतिरिक्त 'पोदिय-मलै' में तपस्या में लीन तमिष के पितामह अगस्त्य मुनि आँखों की रक्षक पलकों के समान तमिष-नाडु की रखवाली कर रहे हैं। इस

प्रकार उत्तर दिशा मे गगन-सदृश मेघवर्ण महाविष्णु, दक्षिण मे कन्या-कुमारी, तथा पश्चिम मे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य—इन तीनों देवताओं की सजग रक्षा मे रहने वाला तमिष-नाड भारती को दिव्य भूमि समान दर्शन देता है तो क्या आश्चर्य ?

इस महिमामयी भूमि मे उत्पन्न होकर पालित-पोषित विकसने वाली मातृभाषा तमिष की प्राचीन महत्ता तथा अर्वाचीन लघुता को तमिष-जनता जाने और समझे, इस हेतु भारती ने तमिष-माता की ओर से एक निवेदन-गीत रचा है।

अपनी सुयोग्य सन्तानो को अपनी व्यथा सुनाने वाली तमिष-चूडामणि[1] लुढ़क चली, कटि की मणिमेखला ढीली पडी, चरणो की पायल विलख उठी। आँखे सजल हुई। वह कहती है

आदिशिवन् से आविर्भूत हुई मै !
आर्य अगत्तिय से परिपूत हुई मै !
वह ब्राह्मण मुझ पर प्रसन्न था !--उससे
चारु व्याकरण मे अनुस्यूत हुई मैं !

सोम - सुरा मे घोल - घोल वैश्वानर
और मातरिश्वा मे नभ मिश्रित कर
रुचिर काव्य[1] रच, दिये तमिष कवियो ने
मुझे अनेक, एक से एक मनोहर !

---

१ तमिष के पाँच महाकाव्य हैं—शिलप्पदिकारम्, मणिमेखला, चूडामणि, वलयापति और कुण्डल-केशि। आभूषणों के नामवाचक होने के कारण इन पाँच काव्यों को अक्सर तमिष-माता के अग सजाने वाले आभूषण कहा जाता है। इस प्रसग में, कुछ दिन पहले तक उन काव्यो के अनुपलब्ध होने की बात का सकेत है। 'वलयापति' और 'कुण्डलकेशि' मूल रूप में अब भी अप्राप्त है।

विविध विधा-विधियो से मुझे सँवारा,
विपुल विश्व मे मेरा यश विस्तारा।
किन्तु काल अधा है,—जग मे जो भी
घट्यमान या घटित, मिटाता सारा।

किन्तु आज मैं क्या सुनती हूँ यह सब ?
प्राणो से प्रिय मेरी सततियो, —अब
मर्म-भेदिनी बातें सुना रहे हे
अनधिकारि-जन !—क्या है इसका मतलब ?

प्रगतिशील-विकसित नित-नई कलाएँ,
पचभूत की सूक्ष्म तत्त्व-विद्याएँ
जैसी उन्नत पश्चिम मे हैं, वैसी
कहाँ तमिष मे ?— लघु उसकी सीमाएँ !

तमिप करे उनकी अभिव्यक्ति ?—असभव !
जगे तमिष मे वैसी शक्ति ?—असभव !
मरणोन्मुख है तमिप, विकासोन्मुख हैं
पश्चिम की भाषाओ के यश वैभव !"

अज्ञ अनधिकारी दें ऐसा ताना ?
हाय कठिन हे यह निंदा सह पाना !
जाओ, आठो दिक्कोणो मे जाना,
प्रचुर कला-विद्या अर्जित कर लाना !

शेष अनुग्रह-सबल अभी पिता का,
और तपोबल कवियो का, कविता का,
निश्चय ही अपवाद मिटेगा, फिर से
फहरायेगी मेरी यश पताका !

इस रीति से तमिप माता अपना सताप व्यक्त करती है और तमिप-भापियो को आश्वासन देकर उत्साहित करती हे।

भारती के इस गीत का आशय मननीय है। यह सत्य और तथ्य है कि पाश्चात्य देशो मे दिन-प्रति-दिन सुचारु बढते जाने वाले कला-विज्ञान की बाते तमिष मे नही है। अपने उस अभाव का अनुभव करके तमिष-माता दु खित है, रुष्ट नही, किन्तु, जब यह बतलाया जाता है कि उन शास्त्रीय बातो को अभिव्यक्त करने की शक्ति तमिष मे नही और इस कारण वह धीरे-धीरे लुप्त-नष्ट हो जायगी, तब माता खीझ उठती है। चूँकि तमिष की शक्ति को पहचानने वाला वैसी बातें मुख से नही निकालेगा वह कहती है कि अनधिकारी व्यक्ति ही ऐसी बाते करता है। फिर भी वे बाते माता के हृदय मे चुभती है। अनधिकारी लोगो की उस निन्दा को दूर करके फिर से कीर्ति-यश दिलाने के लिए अपनी तमिष-सन्तानो से वह अनुनय-विनय करती है।

अंग्रेजी आदि पाश्चात्य भाषाओ के जानकार छात्रो के कर्तव्य को भारती निर्धारित करते है

देशातर के कृती गुणी विद्वानो की
आदृत कृतियो के अनुवाद तमिष मे हो!
यश काय से अजर-अमर रस-सिद्ध नये
ग्रथ विनिर्मित बिना प्रमाद तमिष मे हो!

कला-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दो के लिए तमिष के उपयुक्त शब्द, तमिष के प्राचीन ग्रन्थो ही मे अर्थानुसार खोज निकालकर व्यवहृत किये जाने चाहिएँ। बिलकुल नये शब्द ही गढने पडे तो वे तमिष की अपने शब्द-रचना-गठन-विधान के अनुसार ही गढे जायें। नव साहित्य की सृष्टि करके तमिष को विकसित करते रहना भी अत्यन्त आवश्यक है। उत्साह और लगन के साथ ऐसे काय न करके बेकार गडे मुर्दे उखाडने से कुछ हाथ नही आने का।

अपने मे ही बन्द रहे हम ?—क्या तुक है ?
चर्वित-चर्वण करने मे कुछ रखा नही!
वही पुरानी बातें, वही पुराने स्वर!
उन पर सिर धुन मरने मे कुछ रखा नही!

यदि यह आत्मश्लाघा करते हुए बैठे रहें कि भाल-लोचन शंकर भगवान् तक ने हमारे प्राचीन तमिष संघम में सम्मिलित होकर तमिष रचना की थी, तमिष भाषा का प्रसार नहीं हो पायगा। 'चिर अमर तमिष' का नारा लगाकर डींग मारने से ही तमिष की उन्नति नहीं हो जायगी। संघम की छत्र-छाया में वैगई की तरंगों में पलने के कारण ही तमिष उत्तरोत्तर प्रगति नहीं कर पायगी।

तमिष के सच्चे सेवक को चाहिए कि वह अपनी पुरानी गौरव-गाथा का बखान छोड़ दे। वह तमिष की कमजोरियों को समझे और स्वीकार करे। तमिषनाड के विश्वविद्यालय, देशों के कला-विज्ञान-साहित्य को तमिष में रूपान्तरित करने का गुरु भार अपने ऊपर लें।

आज भी कई ऐसे लोग हैं जिनको इस बात की आशा नहीं है कि तमिष माता फिर से उन्नत-मस्तक हो सकती है। सतान निराश भी हो जाय किन्तु तमिष माता मन नहीं हारी। हतोत्साही पुत्रों को वह ढाढस बँधाती है

वह भविष्यवाणी करती है कि वह दिन निकट आ रहा है जब कि वह जग-भर में विश्रुत होकर फिर से उन्नत उठने वाली है

शेष अनुग्रह-सबल अभी पिता का,
और तपोबल कवियों का, कविता का,
निश्चय ही अपवाद मिटेगा, फिर से
फहरायेगी मेरी यश पताका!

तमिष माता के मुख से भारती द्वारा कथित यह आशा-पूर्ण उक्ति काले बादलों के बीच चमक उठने वाली रवि-किरण के समान है

जयति-सॅन्तमिष, जयति तमिष-जन,
जयति भव्य भारत मन-भावन!

—आर० पी० सेतुपिल्लै

कविता-क्रम

'वंदेमातरम्'

जिस अमर धूलि मे मेरी मैया पली,
जो रही मेरे बापू की क्रीडास्थली,
शत-सहस पूर्व-पुरुषो की जो जन्म-भू,
शत-सहस पूर्व-पुरुषो की जो कर्म-भू,
उन मनीषी-जनो से समादृत हुई,
उनके उन्नत विचारो से विश्रुत हुई
भूमि जो, वदना आज उसकी करूँ,
मान उसका करूँ, ध्यान उसका धरूँ,

'वदेमातरम्, वदेमातरम्'
हर्ष से गा उठूँ 'वदेमातरम्' ।

जन्म-जीवन-प्रदा, स्नेह की जो धरा,
जो जननियो की जननी, तथा उर्वरा
पालिका भी, जहाँ बाल्य के दिन कटे,
भारती बन रही आदि-तुतलाहटे,
चाँदनी मे जहाँ खेलती-कूदती-
तैरती कात कैशोर देहे सुती,

उस धरा धाम की वंदना मैं करूँ
मान उसका करूँ, ध्यान उसका धरूँ

'वंदेमातरम्, वंदेमातरम्'
हर्ष से गा उठूं 'वंदेमातरम्'।

की जहाँ सिद्ध गृह-धर्म की साधना,
स्तन्य देकर प्रजा पाल, उन्नतमना-
शुचिमना देश-जन को किया अंक में;
सौम्य जीवन का शुचि पथ दिया! —अंक में
मंदिरों को लिये पुण्य-भू! —धूलि-कण
अंत में देह-तत्त्वों की पावन शरण
जिस धरा-धाम के,
वंदना मैं करूँ,
उस धरा-धाम का, ध्यान उसका धरूँ,

'वंदेमातरम् वंदेमातरम्'
हर्ष से गा उठूं 'वंदेमातरम्'।

गाओ 'वंदेमातरम्'

आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर ले 'वदेमातरम्'
'वदेमातरम्' ।
जननी जन्म-भूमि के प्रति नत नमस्कार कर ले 'वदेमातरम्' ।

दूर करे हम जात-पॉत के भेद-भाव ।
ब्राह्मण हो या अब्राह्मण,—क्यो हो दुराव ?
जन्म लिया है एक देश की मिट्टी पर,—
इस नाते सब एक, नही कोई अतर ।
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर ले 'वदेमातरम्' ।

जो अछूत है, वह भी कोई और नही,—
क्योकि उसे भी तो रहना है साथ यही ।
जो अपने हो, वे बन जायें पराये क्यो ?
और पराये अपनी हँसी उड़ाये क्यो ?
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर लें 'वदेमातरम्' ।

अपने घर मे है यदि है जातियाँ हजार ।—
इससे क्या बाहरी जमा लेगा अधिकार ?—
यह अनीति है, यह अन्य' सरासर है ।
भले लडे-झगडे हम, । सहोदर है ।
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक ।र कर ले 'वदेमातरम्' ।

मिल-जुलकर रहने-सहने मे है जीवन,
और भेद मे है सामूहिक अधःपतन!
यदि हम इस रहस्य को कर लें हृदयगम
तो सब चिताओ मे बच सकते हैं हम!
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर ले 'वदेमातरम्'!

भले किसी स्थिति मे हो, कोई पद पायें, —
भारतीय होने का गौरव अपनायें!
जन्म-मरण के सगी हैं हम तीस करोड़[1]!
जन्म-मरण मे सग रहेंगे तीस करोड़!
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर लें 'वदेमातरम्'!

पराधीनता का जीवन लज्जा की बात
पराधीन जीवन पर लज्जित हो हम साथ!
दास-वृत्ति से अब तो पिंड छुड़ा ले हम, —
निंदनीय स्थिति से छुटकारा पा ले हम!
आओ, उच्चारित सब मिलकर एक बार कर ले 'वदेमातरम्'!

---

[1] भारती के युग मे भारत की जनसख्या।

भारतवर्ष

अखिल विश्व मे अतुलनीय उत्कर्ष !—
हमारा भारतवर्ष !
ज्ञान और विज्ञान, अर्थ-परमार्थ-ध्यान;
मान, आत्म-सम्मान, प्राण, धन-धान्य-दान;
सुधा-सिधु रस-गान, काव्य-कृतियाँ महान्,—
सब-कुछ जिसका है जग का आदर्श !—
हमारा भारतवर्ष !
अखिल विश्व मे अतुलनीय उत्कर्ष !—
हमारा भारतवर्ष !

.... —

उत्साही, ऊर्जस्वी, कर्मठ, उद्यम-रत,
श्रम-सुपुष्ट, श्री-युक्त, भुज-बली, श्रेयोव्रत,
रक्षण-सक्षम, दक्ष, विपक्षी पर यमवत्,
शूरो की सेना जिसकी दुर्द्धर्ष !—
हमारा भारतवर्ष !
अखिल विश्व मे अतुलनीय उत्कर्ष !—
हमारा भारतवर्ष !

. .. ..

झील, झरने, सरिताएं, उदार सरवर,
मलय-बयारें, अचलों के उत्तुंग शिखर,
उपयोगी संपदा, प्रचुर पशु-धन, वनचर,—
जिसकी प्रकृति प्रकृति-देवी का हर्ष।—
हमारा भारतवर्ष।
अखिल विश्व में अतुलनीय उत्कर्ष।—
हमारा भारतवर्ष।

अस्त्र-शस्त्र अनुमित निर्मित, पुस्तकें अमित-परिमाण करें,
विद्यालय खोलें, पुतलीघर, कागज का निर्माण करें।
आलस दूर भगायें,—कभी किसी के आगे सिर न झुकें।
सच्ची कहें। वीर-व्रत पालें। बाधाएँ झेलें, न रुकें।
भारत नाम अभय का।
भारत नाम विजय का।

...

अमृत वचन है तमिष-धर्मजा[1] का, कि "जातियाँ दो ही हैं"।
एक जाति, दूजी अजाति की,—रूढी पाँतियाँ दो ही हैं।
न्याय, खरेपन, परहित, अनुशासन की पाँत महानों की,—
इनके बाहर पाँत दूसरी अधम अहित हतमानों की।
भारत नाम अभय का।
भारत नाम विजय का।

[1] प्राचीन तमिष कवयित्री औवैयार् जो तमिष माता की औरस पुत्री मानी जाती है। (तमिष भाषा आदिशक्ति का अवतार मानी गई है।) औवै ने दो जातियाँ नर-जाति और नारी-जाति की मानी हैं। भारती ने औवै के वचन का अपना नया भाष्य किया है।

भारत-माता की प्रभाती

प्रात हुआ !—सुकृत हमारे समुदित है !
प्रात हुआ !—गर्हित तम अंतर्हित है !
दिग्विदिक् विकीर्ण स्वर्ण-किरण-गान है !
ज्ञान-भानु भासमान है !—विहान है !
देखो, हम जुटे कोटि सेवक सुत है,
प्रणत है, प्रशस्ति-गान को प्रस्तुत है !
अब तक तुम निद्रा-गत हो ?—विस्मय है !
उठो उठो, जागो माँ !—प्रात समय है !

दुंदुभि बज उठी गा उठा विहग-कुल
सब कही स्वतन्त्रता-निनाद का तुमुल !
आध्मात धवल शंख, प्रात नाद-स्नात,
वीथि वीथि जन संकुल,—कुछ न तुम्हे ज्ञात ?
दिङ्-मंडल नामामृत-कीर्त्तनमय है,
विज्ञ विप्र वेद-पाठ मे तन्मय है
अमृतमयी जननि, तुम्हारी जय जय है !—
उठो उठो, जागो माँ ! प्रात समय है !

मां सोती रहे, बाल-वृंद जगाये!—
यह कैसी बात?—भेद समझ न पाये!
तुतलाते बोलो की अनसुनी कहीं
होती है?—हमने अब तक सुनी नहीं!
अष्टादश[1] भाषाओं में वंदी-जन
कर रहे तुम्हारी विरुदावलि-गायन!
भारत-रानी हो!—पर मातृ-हृदय है
या नहीं?—उठो, जागो!—प्रात समय है!

---

[1] (पाकिस्तान समेत अखंड) भारत की भाषाएँ संस्कृत और अँगरेज़ी मिलाकर १८ हैं। एक और गीत में भारती ने कहा है कि भारतमाता १८ भाषाएँ बोलती है, पर उसकी विचार-धारा एक है।

माता का मणिमय ध्वज

मां का मणिमय ध्वज निहार लो !—गौरव-ध्वज जनता का है !
सविनय यश गाओ माता की रत्नो जडी पताका है !

ऊँचे नभ-चुबी खभे पर शोभित है !—छवि मे अनुपम !
झिलमिल-झिलमिल दिव्य प्रभा है !—अकित 'वदेमातरम्' !
फरफर फरफर फहराता है !—चमक रहा चमचम-चमचम !
नवल काति है !—धवल उदार वितान सुकीर्ति लता का है !
मां का मणिमय ध्वज निहार लो !—गौरव-ध्वज जनता का है !

यह तो मणिमय ध्वज है !—इसको कौन कहेगा 'पट' केवल ?
प्रवल प्रभजन मे, झझानिल मे भी फहराता अविचल !
नही-नही, 'पट'-मात्र नही है, यह तो है 'माणिक्य पटल' !
अडिग दड इसका प्रमाण इसकी अजेय दृढता का है !
मां का मणिमय ध्वज निहार लो !—गौरव-ध्वज जनता का है !

... ...

मां के मणिमय ध्वज के नीचे टोली जुटी विलक्षण है
सभी एक से एक सूरमा, प्रति भट समर-विचक्षण है !
ये प्राणोपरि व्रत पालेगे !—व्रत इनका ध्वज-रक्षण है !
विश्वसनीय वीर-वर है !—वल इन्हे देश-ममता का है !
मां का मणिमय ध्वज निहार लो !—गौरव-ध्वज जनता का है !

. .. .

प्रथित नाम है तमिष-नाडु के समर-सिद्ध ये रण-बका!—
मरव[1] जाति के रक्त-नयन ये जन जिनके यश का डका
बजा हुआ वीरो मे है!—ये केरल-वीर, जिन्हे शका
कभी न जय के विषय मे हुई!—आध्र, कि जिनका साका है!
—सबका व्रत जिसका रक्षण, वह माँ की रत्न-पताका है!

... ...

तुलुव · मातृ-सेवक गरवीले! वीर पचनद-पुत्र बली!
पार्थ-जन्मधरती के वासी, समर-शूरता जहाँ पली!
स्वप्नो मे भी मातृ-चरण-सेवा जिनकी अविराम चली,
वग-भूमि के उन वीरो पर उचित गर्व माता का है!
—सबका व्रत जिसका रक्षण, वह माँ की रत्न-पताका है!

ध्वज-रक्षक समवेत हुए है! देखो, सब सन्नद्ध अभय!
अमर रहे ये! सफल रहे व्रत! अटल रहे इनका निश्चय!
गुजित रहे दसो दिशि भारत माता के ध्वज की जय-जय!
यह ध्वज वदनीय जग की सारी सुविज्ञ प्रतिभा का है!
जय-जय भारत-ध्वज की! माता की मणि-जटित पताका है!

---

[1] तमिष-नाडु की पहाडी जाति, जो साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध है।

भारत-दुर्दशा[1]

व्याकुल हो उठता हूँ, मुझसे रहा नही जाता है,—
इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।
कैसे हैं ये लोग कि पग-पग अदेशो मरते है।
भला कौन-सी वस्तु न जिससे ये कायर डरते है?
किसी वृक्ष पर यक्ष, किसी पोखर मे प्रेत पडा है,
और किसी टीले पर वेतालो का जमावडा है।
कही अँधेरा हो, सूना हो, इनका भूत वही है,—
आशका से, घबराहट से, पल-भर चैन नही है।
    इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।

. ...

वर्दीधारी के दिखते ही इन्हे कँपकँपी आती,
पुलिस हो कि दरबान, प्राण-भय से धडकन बढ जाती।
दूर कही पर भी कोई बदूक लिये दिख जाये,
तो ये घर के कोने मे छिप जाते साँस चढाये।

---

[1] रचना-काल सदी का पहला दशक।

वहाँ बटोही कोई अपनी राह चला जाता है,—
यहाँ देख उसका पहनावा, दम निकला जाता है।
सहमे-सहमे, दुबके-दुबके, डरते सभी-किसी से,
सदा हाथ बाँधे रहते है ये भीगी बिल्ली से।
इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।

व्याकुल हो उठता हूँ, मुझसे रहा नही जाता है,—
इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।
आपस के झगडो मे ही उलझे रहते हरदम है।
भेद नही थोडे आपस के, कोटि कहूँ तो कम है।
पिता सोचता और, पुत्र के मन की और-कही गति,—
पिता-पुत्र मे किसी भाँति भी हो न सकी यदि सहमति,
तो दोनो का वैमनस्य है तिल को ताड बनाता,
बात-बात मे घोर यादवी रण का पण ठन जाता।
इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।

आधि-व्याधियाँ है असख्य, जिनमे कि ग्रस्त ये जन है।
अपने से उठकर चलने मे भी अशक्त ये जन है।
आँखो के रहते अधे है।—भोले बच्चो-से है।
किसी-और ने राह धरा दी तो ये चल पडते है
और जाल मे फँस जाते है।—जहाँ सभी सुविधाएँ,—
जहाँ कि चार खरब[1] पनपी है ललित महान् कलाएँ,
वही, उसी सपन्न भूमि पर, ये घुल-घुल मरते है,
मूक बेसमझ पशुओ-सा जीवन यापन करते है।
इन नासमझो का विचार तक सहा नही जाता है।

---

[1] 'चार खरब' 'असख्य' का बोधक है।

गंतुक भारत से एवं आगतुक भारत से

ओ अशक्त, ओ क्षीण-वाहुवल !—जाओ, जाओ जाओ !
ओ कायर, कुचित-वक्षस्थल !—जाओ, जाओ जाओ !
ओ मलीन, निष्प्रभ मुखमडल !—जाओ, जाओ जाओ !
ओ दृगध, मडन-दृग केवल !—जाओ, जाओ जाओ !
कठ युक्त फिर भी अस्फुट-कल !—जाओ, जाओ जाओ !
कातिहीन-वपु जीवन-निष्फल !—जाओ, जाओ जाओ !
भीति ग्रस्त ओ कपित-हृत्तल !—जाओ, जाओ जाओ !
पतन-काम साकार अमगल !—जाओ, जाओ जाओ !

..

हे तेजोमय, दीप्त-नयन हे !—आओ, आओ आओ !
हे व्रतधर, दृढ-निश्चय-मन हे !—आओ, आओ आओ !
हे प्रसन्न-मुख, मधुर-वचन हे !—आओ, आओ आओ !
हृष्ट-पुष्ट दृढ-भुजवल जन हे !—आओ, आओ आओ !
शुद्ध-बुद्धि, निर्मल-चेतन हे !—आओ, आओ आओ !
पामरता के प्रति असहन हे !—आओ, आओ आओ !
किंतु दैन्यपर विगलित-मन हे !—आओ, आओ आओ !
भद्र, अनुद्वत वृषभग-मन हे !—आओ, आओ आओ !

भारत-जनगण

भारत-जनगण अमर रहे। भारत-जनता की जय हो।
भारत के जनगण की जय हो।—जय हो, जय हो, जय हो।
भारत जनगण अमर रहे।—भारत-जनता की जय हो।

तीस कोटि जनगण का सघ उदार।
तीस कोटि को है समान अधिकार।
अद्वितीय जनता, समुदाय अपार।
अखिल विश्व मे अनुपमेय उद्धारकता की जय हो।
भारत-जनगण अमर रहे, भारत-जनता की जय हो।

मानव का मुख-ग्रास छीन ले मानव?
यह क्या अब भी सभव?
मानव का दुख देख न पिघले मानव?
यह क्या अब भी सभव?
धरे हाथ पर हाथ?—यह क्या अब भी सभव?
दे न दुखी का साथ?—यह क्या अब भी सभव?
शस्य-प्रचुर प्रांतर, सुगध-सुमनो के अगणित उपवन,—
हरी-भरी भारत-भू,
विविध फूल-फल-मूल-धान्य-परिपूरित, जीवन-जीवन,—
क्षेमकरी भारत-भू,

हरी-भरी भारत-भू, क्षेमकरी भारत-भू, शोभन,
प्रचुर-दायिनी भारत-भू यह,
प्रचुर-दायिनी, योग-क्षेम-वह,
प्रचुर-दायिनी भारत-भू की पावनता की जय हो!
भारत-जनगण-अमर रहे!—भारत जनता की जय हो!

ऐसे संविधान की रचना मिल-जुलकर की जाये,
उसको निरपवाद सब पाले,—
एक व्यक्ति भी यदि भूखा हो, अन्न नही वह पाये,
तो हम जगत् ध्वस्त कर डाले!
दिव्य अन्नपूर्णा धरती की पूरणता की जय हो!
भारत जनगण अमर रहे!—भारत-जनता की जय हो!

"सभी प्राण वालो मे मैं ही प्राण"[1]—
कह गए गीता मे भगवान्!
सभी अमरता पा ले, ऐसा ज्ञान
दे रहा है यह देश महान्!

---

[1] शब्दो से स्पष्ट नही होता कि यह उद्धरण "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित" ("मैं ही आत्मा सभी 'भूतो' के 'आशय' मे विराजता", गीता अ० १०, श्लो० २०), "भूतानामस्मि चेतना" (" 'भूतो' की हूँ 'चेतना' " १०/२२), "सत्त्व सत्त्ववतामहम्" (" 'सत्त्व' हूँ सत्त्व वालो का" १०/३६),तथा "यच्चापि सर्वभूताना बीज तदहमर्जुन, न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूत चराचरम्" ("अर्जुन, सभी 'भूतो' का जो भी है 'बीज' मैं वही, है ही नही न जो मेरे विना हो चर या अचर" १०/३९) मे से किसका अनुवाद है, पर यह तो स्पष्ट है कि यह भाव गीता का है।

हाँ, जग को यह मार्ग दिखाता है यह देश महान्।
हाँ, हाँ, जग को मार्ग दिखाता है यह देश महान्।
जग को सत्पथ देने वाली सज्जनता की जय हो।
भारत-जनगण अमर रहे।— भारत-जनता की जय हो।

एक जाति है, एक गोत्र है, एक वर्ग सबका है।
एक देश का धाम, देश में तुल्य अंश सबका है।
तुल्य तोल है, तुल्य मोल है, तुल्य सकल नर-नारी।
हम सब हैं भारत-अधिकारी।
हाँ, सब है भारत-अधिकारी।
हाँ, हाँ, है भारत-अधिकारी।

भारत की सत्ताधारिणी अमर जनता की जय हो।
भारत के जनगण की जय हो। जय हो, जय हो, जय हो।

तमिष्-नाडु

'तमिष-नाडु'[1] नाम-श्रवण से पुलकित हो उठता है अतर ।
बरस रहे हो कानो मे मानो मधुर सुधा के सीकर ।
पितृभूमि की चर्चा यदि कोई पडती है कानो मे ।
तो सचारित-सी हो उठती है नव्य शक्ति प्राणो मे ।
'तमिष-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है ।

वेदो का देश, ज्ञान का उद्गम, तमिप-नाडु अपना है ।
वीरो का देश है, विदित-विक्रम तमिप-नाडु अपना है ।
प्रणयार्पित प्रणय-कला-पारगत सुर-बालाओ जैसी
बालाएँ जहाँ, देश वह उत्तम तमिप-नाडु अपना है ।
'तमिष-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है ।

काविरि है, पालारु तथा दक्षिण-पॅण्णै है, पॉरुनै है,
आदि-तमिप के विकास को आँखो देख चुकी वैगै है ।[2]

[1] इस कविता मे और अन्य रचनाओ मे भी कवि ने 'तमिप-नाडु' को प्राय 'सॅन्तमिष-नाडु' (शुद्ध अविमिश्र तमिष भाषा का देश) कहा है । मूल शीर्षक भी वही है । तमिप-नाडु (देश)- भक्ति का मूल तमिप (-भाषा)- भक्ति ही है ।

[2] तमिप-नाडु की नदियाँ । ('कावेरी' नाम से हमारी सुपरिचित) 'काविरि' चोप-क्षेत्र चोप-नाडु की है । 'पालारु' ('पयस्विनी') पल्लव-क्षेत्र तॉण्डैनाडु की है । दक्षिण अर्काट् से बहने

नाना नदियो से अभिषिक्त देश तमिप-नाडु अपना है।
स्वर्णशस्य-ऋद्धिमय, विविक्त देश तमिप-नाडु अपना है।
'तमिप-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

मुत्तमिष[1]-जनयिता मुनि-सत्तम जिस पर्वत पर निवसित हैं,
उस पर्वत से रक्षित तमिष-नाडु सर्वथा सुरक्षित है।
जगतीतल पर धन जो भी है, सुख का साधन जो भी है,
सबसे सपन्न, अयाची, वसु-धर तमिप-नाडु अपना है।
'तमिप-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

वाली तॅम्पॅण्णै या दक्षिणपण्णै पद्मोत्तर० (अ० १५६) मे वर्णित 'वेणि' है। पॉरुनै-नाडु की 'पॉरुनै' (भा० व०, अ० ८८ मे वर्णित) 'ताम्रपर्णी' है, जिसके उजानी-तट पर वैदूर्य पर्वत ('पोदिय-मलै') के ऊपर अगस्त्याश्रम, अगस्त्य-शिष्यो के आश्रम तथा श्रीमान् मणिमय शिव के तीर्थ हैं।' तरुनॅल्वेलि' इसीके तट पर अवस्थित है। 'रघुवशम्' मे इसके सागर-सगम 'ताम्रपर्णीक' पर मोती निकाले जाने का उल्लेख है ("ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासार महोदवे")। प्राचीन साहित्य मे गिनाये गए आठ मुक्ताकरो मे से एक ताम्रपर्णीक भी है ("सिहलकपारलौकिकसौराष्ट्रकताम्रपर्णीकपारशरा, कौवेरपाण्ड्यवाटकहैमा इत्याकरा ह्यष्टौ" वृ० स०, अ० ८१)। पाण्ड्यनाडुकी वैयै या वैगै (उच्चा० 'वइगइ') तमिप-साहित्य मे "कवियो के कठो मे वसी नदी" कहलाती है। शैव ऋषि-त्रयी के अन्यतम कवि अप्पर् (तिरुनावुक्करशर्) वैगै-तीर के ही वासी थे। तमिप-काव्य को वैगै-तट के कवियो की देन अन्य सभी क्षेत्रो की देन से बढ-चढकर है तथा पाण्ड्यनाडु की साहित्य-सृष्टि-परपरा भी और सभी क्षेत्रो से पुरानी है।

[1] त्रिविध-साहित्य-सयुत तमिप। अर्थात् पद्य, गद्य और नाटक, तीनो विधाओ के समृद्ध प्राचीन साहित्य मे सपन्न रस-मधुर

नील नीरनिधि तरग-भगो मे उद्वेलित,—निशि-वासर
तपश्चरण-निरत कुमारी-कन्या-सीमा उसके तट पर।
अडिग खडा है उत्तर को सीमा पर वेकट-धरणीधर[1]।
मध्य मे विराजित यशोमडित तमिप-नाडु अपना है।
'तमिप-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

विद्या-विश्रुत भू, 'विद्या-विशिष्ट' गुण-विशिष्ट पदवीधर
कवि कवन्[2] की जननी जन्मभूमि होने का गर्वंकर
गौरव-पद है जिसका, साहित्यिक रस-सौरभ चेतोहर
जिसका जग-भर मे फैला है, वह तमिप-नाडु अपना है।
'तमिप-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

तमिप भापा। तमिप मे तीन विधाओ के साहित्य का विकास और भापाओ की अपेक्षा पहले हुआ। 'मुत्तमिप' के जनक अगत्तिय (अगस्त्य) मुनि माने जाते ह। उनका निवास पोदियमलै (भा० व० का वैडूर्य पवन) है, जिसे इसी कारण तमिप-मलै भी कहते ह।

[1] मालवन् (माल्यवत) पर्वत।

[2] अमर महाकाव्य 'रामायणम्' के रचयिता कवन् (आदर मे कवर्') 'कल्वियिर्पेरियवर् कवर्' (विद्याविशिष्ट या विद्या-महान् कवन् जी) कहे जाते हैं। कवन् की तुलना होमर मे की गई है। स्व० य० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर् ने इनकी गणना दस विश्वमान्य कवियो मे की है।

तिरुवल्लुवर्[1]-जैसा रत्न-दान करके जिसने उपकृत
निखिल विश्व को कर लिया अपना, स्वय को यशोमडित,
जिसके वक्षस्थल पर मुक्तादल की माला वन शोभित
सिलप्पदिकारम्[2] है मनोहर, वह तमिष-नाडु अपना है।
'तमिष्-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

सिहल, पुष्पक, शावक[3] इत्यादिक द्वीपो पर जय-केतन
फहरे जिन राजाओ के, उनकी जन्मधरित्री पावन
तमिष-नाडु ही है, जो राजा थे व्याघ्रध्वज, झपकेतन[4]
उनकी भी पुण्य जन्म-धरणी यह तमिष-नाडु अपना है।
'तमिष-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

हिमगिरि के अभ्रलिह् शृगो से टकराने मे सक्षम
अक्षौहिणियाँ जिन पृथिवीपतियो की थी रण मे दुर्दम
अस्तगम कर कळिग-सत्ता को[5] चमका जिनका विक्रम,
उन वीरो की प्रताप-गाथा-मय तमिष-नाडु अपना है।
'तमिष-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

---

[1] 'तमिष-वेद' के नाम से जगत्-प्रसिद्ध नीति-ग्रथ 'कुरल' (तिरुक्कुरल्) के रचयिता वल्लुवन् (आदर मे 'तिरुवल्लुवर्'), जिनकी तुलना सुकरात, अरस्तू और ताव्-धर्म-प्रवर्त्तक लाव्-त्स्जे से की जाती है। आदियुग (ईसा-पूर्व) के तमिष मनीषियो मे वल्लुवन् वैसे ही मूर्द्धन्य है, जैसे मध्य-युग मे कवन्।

[2] तमिष के पाँच महाकाव्य-रत्नो मे प्रथम। (इतिहास-प्रसिद्ध चेर राजा चेगुट्टुवन् के भाई और) राज-मोह त्यागकर युवावस्था मे ही सन्यासी बने कवि इलगो की कृति।

[3] क्रमश श्रीलका, फिलिपाइन और यवद्वीप।

[4] चोष राजा व्याघ्र-केतन और पाड्य राजा मकर-केतन थे।

[5] एक चोष राजा ने कळिग-विजय की थी।

चीन-मिस्र-यव-यवनस्थानादिक भूभागो मे उज्ज्वल
यशश्चद्र चमका जिन लोगो का, जिनके पौरुप का फल
ज्ञान, कला, विद्या, वाणिज्योद्यम, करकौशल, रणकौशल,
—सबमे था फलित, देश उनका यह तमिष-नाडु अपना है।
'तमिप-नाडु' नाम-श्रवण से अतर पुलकित हो उठता है।

तमिष्

जितनी भी भापाग्रो मे ग्रपनी गति है,
जितनी भी भाषाग्रो का है ग्रपना ज्ञान,
उनमे ऐसी एक भी नही मिली हमे,
मधुर तमिप से हो जिसकी माधुरी समान!
ग्रो पामर पशु का जीवन जीने वालो,
ग्रो जग-भर के निंदा-पात्रो, नामर्दो,
ग्रो निस्सत्त्वो, यह कहना कि 'तमिप-भापी
हम हैं' उचित कहाँ तक होगा ?—उत्तर दो!
भापा यह मधु-मधुर उपेक्षित ही न रहे,
तमिप-माधुरी से जग-भर परिचित हो जाय,
तमिष-भाषियो, ऐसी कोई युक्ति करो,
तमिप-मानियो, ऐसा कोई करो उपाय!

जितने भी कवियो की कृतियो से परिचय
प्राप्त हुग्रा,—सौभाग्य मिला ग्रास्वादन का,
ऐसा कोई भी तो नही मिला उनमे,
जिसको हम वल्लुवन्-इलगो-कबन् का

मानासन दे सके !—नही, उन-सा कोई
जगती तल पर प्रगट हुआ ही कहाँ अभी ?
तथ्य-कथन है यह, मिथ्या अभिमान नही,
अथवा न ही आत्मश्लाघा है किंचित् भी !
ओ पामर पशु का जीवन जीने वालो,
मेरी बात सुनो, मूको-अघो-वहरो
यदि तुमको अपना हित प्रिय है तो अब से
गली-गली मे तमिष-तूर्य का घोप करो !

देशातर के कृती गुणी विद्वानो की
आदृत कृतियो के अनुवाद तमिप मे हो !
यश -काय से अजर-अमर रस-सिद्ध नये
ग्रथ विनिर्मित विना प्रमाद तमिप मे हो !
अपने मे ही वद रहे हम ?—क्या तुक है ?
चर्वित-चर्वण करने मे कुछ रखा नही !
वही पुरानी वाते, वही पुराने स्वर !—
उन पर सिर धुन मरने मे कुछ रखा नही !
यदि अपने मे कही विलक्षण प्रतिभा है,
तो वह क्यो सीमित घर ही मे व्यापृत हो !
सीमाओ से उसे निकालो, व्याप्त करो !
यो कि इतर देशो मे भी वह आदृत हो !

दीप्त सत्य का दीपक हो यदि अतर मे,
दृप्त दिव्य वाणी भी फूटेगी मुख से !
वन्या-सा विन्यास कला का, कविता का,
निर्विशेप सव देश सीच देगा सुख से !
फिर तो अधे अधकूप से निकलेंगे !—
और मिलेगे उन्हे ज्ञानमय नये नयन !

उनके अवनत मेरुदंड तन जायेंगे।
उनका आदर-मान करेंगे जग के जन।
तमिप सुधा है।—तमिप-सुधा का आस्वादन
जिसने भी कर लिया, धन्य उसका जीवन।
उसने तो उपलब्ध कर लिया वह वैभव,
जो अमरों का भोग्य, दिव्य, लोकोत्तर धन।

तमिष् माता

आदिशिवन्[1] से आविर्भूत हुई मैं।
आर्य अगत्तिय[2] से परिपूत हुई मैं।
वह ब्राह्मण मुझ पर प्रसन्न था।—उससे
चारु व्याकरण मे अनुस्यूत हुई मैं।

लालन-पालन मिला तमिप-कुल-त्रय[3] से
और प्रीति-मधु-दान मनीपी-चय से।
ऐसा मिला विकास कि जग ने देखा
आरिय[4] के समकक्ष मुझे विस्मय से।

---

[1] शैव-दर्शन मे ब्रह्माड-सृष्टि के कारण-भूत मूल तत्त्व माने जाने-वाले भगवान् 'आदिशिव' ('कारणब्रह्म')।

[2] तमिप के पाणिनि भगवान् अगस्त्य मुनि, जो आर्य वश के थे और उत्तर भारत मे जाकर 'वैदूर्य-पर्वत' (पॉदिय-मलै) पर आश्रम बनाकर बस गए थे।

[3] तमिप के विकास-काल मे उसके पोपक तीन राज-कुल चेर, चोप और पाड्य।

[4] (='आर्य' अर्थात्) सस्कृत। तमिप मे सस्कृत 'आरिय' नाम से ही जानी जाती है।

सोम-सुरा मे घोल-घोल वैश्वानर
और मातरिश्वा मे नभ मिश्रित कर
रुचिर काव्य रच, दिये तमिप कवियो ने
मुझे अनेक, एक से एक मनोहर।

विविध विधा-विधियो से मुझे सँवारा,
विपुल विश्व मे मेरा यश विस्तारा।
किंतु काल अधा है,—जग मे जो भी
घट्यमान या घटित, मिटाता सारा।

भले-बुरे मे अतर नेक न करता,—
सब समेटता, तनिक विवेक न करता।
कितनी निधियाँ वन्या मे बहने से
बच जाती यदि वह अतिरेक न करता।

बहुत सुना कौमार्य-कौमुदी-वय मे,
बहुत बोलियो से कैशोर-समय मे
परिचय बढा, परतु नाम तक उनके
शेष न रह पाए स्मृति के सचय मे।

किंतु अनुग्रह रहा पिता का सबल।
और पूज्य कवियो का मिला तपोबल।
मुझ पर आँख उठाने से इस कारण
विरत रहा डर काल-दस्युओ का दल।

किंतु आज मै क्या सुनती हूँ यह-सब?
प्राणो से प्रिय मेरी सततियो,—अब
मर्म-भेदिनी बाते सुना रहे है
अनधिकारि-जन!— क्या है इसका मतलब?

"प्रगतिशील-विकसित नित-नई कलाएँ,
पचभूत की सूक्ष्म तत्त्व-विद्याएँ
जैसी उन्नत पश्चिम मे हैं, वैसी
कहाँ तमिप मे ?—लघु उसकी सीमाएँ।

"तमिप करे उनकी अभिव्यक्ति ?—असभव।
जगे तमिप मे वैसी शक्ति ?—असभव।
मरणोन्मुख है तमिप, विकासोन्मुख है
पश्चिम की भाषाओ के यश वैभव।"

अज्ञ अनधिकारी दे ऐसा ताना ?
हाय, कठिन है यह निंदा सह पाना।
जाओ, आठो दिक्कोणो मे जाना,
प्रचुर कला-विद्या अर्जित कर लाना।

शेष अनुग्रह-सवल अभी पिता का,
और तपोवल कवियो का, कविता का,
निश्चय ही अपवाद मिटेगा, फिर से
फहरायेगी मेरी यश पताका।

तमिष-भाषा-संवर्द्धना

(तानऽ तनत्तनऽ तानऽ तनत्तनऽ
तान तन्ता ने)

जयति निरतर तमिष्-भारती
जयति जयति जय हे !

जयति त्रिविक्रम-धारण- सक्षम[1]
'तमिष, जयति जय हे !

तमिष हमारी, तमिप हमारी
नित्य जयति, जय हे !

---

[1] शब्दातीत त्रिविक्रम विष्णु की विराट्ता तक को अभिव्यक्त करने मे समर्थ ।

जयति सॅन्तमिप

जयति मॅन्तमिप, जयति तमिप-जन,
जयति भव्य भारत मन-भावन।
वदेमातरम् वदेमातरम्।

मिटे दुरित, दुख, सकट, अनभल।
मगल हो, गल जायँ अमगल।
धर्म वढे, क्षय हो अधर्म खल।
वदेमातरम् वदेमातरम्।

आर्य सदुद्यम पौरुष-प्रेरित,
शील, व्यवस्थित, उत्तम हो नित,
रहे देश-जन उन्नति-मडित।
वदेमातरम् वदेमातरम्।

स्वाधीनता की महिमा

वीर स्वाधीनता-प्रेमियो को भला
क्यो रहेगी जगत् मे इतर कामना ?
हो सुधापान ही इष्ट जिनका सदा,
वे सुरापान को क्यो रहे हृतमना ?
है प्रकृतिसिद्ध 'जन्मे कि ध्रुव मृत्यु है'[1] ।
इस नियम की जिन्हे प्राजल विचारणा !—
प्राणधारण विगतलज्ज च्युतधर्म का
है न उनकी कभी स्वस्ति की धारणा !
वेच ख-द्योत-कर भानु को मोल ले
कीट-खद्योत, किसकी भला वासना ?
नयन-तारा गँवा बैठ स्वाधीनता,
अधता मात्र है चाकरी चाहना !
'वदेमातरम्' कह झुका शीश जो,
मोह से वह झुके, यह न सभावना !
तारक मत्र है · 'वदेमातरम्'—
भूल से भी न क्षतव्य अवमानना !

---

[1] 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु !' गीता २।२७ ।

स्वतंत्रता का बिरवा

इसको कोई नीर सीचकर थोडे ही पाला है ?
सर्वेश्वर, इसमे तो हमने नयन-नीर डाला है !
अब तेरा प्रसाद क्या ऐसा ही है यह मुरझाये,
नयनवारि-सिंचित बिरवा यह असमय ही मर जाये ?

ध्यान-धारणाओ के घृत से यह दीपक बाला है ! —
इसी दीप की लौ से अतस्तल मे उजियाला है !
अब तेरा प्रसाद क्या ऐसा ही है - निर्वापित हो
यह सुदर दीपक ?—अतर फिर अधकार-शापित हो ?

'जहाँ धर्म है वहाँ विजय है' ![1] ऐसा आर्ष वचन है !
किंतु तथ्य विपरीत !—हाय, मिथ्या क्या आप्त कथन है ?
पूर्वकर्म-फलभोग अभी तक हुए समाप्त नही क्या ?
जितने भोग लिये है, उतने ही पर्याप्त नही क्या ?

---

[1] महाभारत, उद्योगपर्व ५।१३८-१४१ (कर्णोपनिवाद) मे कर्ण कृष्ण से कहते हैं "क्षपयिष्यति न सर्वान्स सुव्यक्त महारणे ।
विदित मे हृषीकेश यतोधर्मस्ततो जय ॥"
इस प्रकार यह आर्ष वचन तो नही है, पर 'धर्म' का अर्थ 'युधिष्ठिर' न लेकर 'श्रेयम् का अभ्युदय-साधक' मानते हुए श्लोक के केवल चतुर्थ चरण को आप्त-वाक्य के रूप मे स्वीकृत कर लिया गया है ।

जो पूजा के योग्य, अर्चना के जो अधिकारी हैं,
वे कारागारो मे बदी, सहते दुख भारी है।
जो सुविज्ञ जन है, वे सबके आदर-पात्र नही क्या?
कोल्हू पर देखा है उनको श्रम-श्लथ-गात्र नही क्या?

सज्जनता का पुरस्कार तेरे विधान मे क्या है?
जो सज्जन हैं, उनके बाँटे केवल व्याकुलता है?
जैसे नेत्रहीन शिशु पग-पग टकराता फिरता है,
वैसे ही उद्विग्न सज्जनो पर सकट घिरता है।

प्राणोपम पत्नियो और प्राणोपरि सततियो से
जिन्हे बिछुडना पडता है, कुछ पूछा उन पतियो से?
वय के प्रथम चरण मे प्रेमिजनो का मन देखा है?
जो अतर को मथ जाता है, वह बिछुडन देखा है?

मेरे पिता, बहुत-कुछ तुझसे हमे प्रसाद मिला था।—
सब खो बैठे।—शेप रहा केवल जो स्वाद मिला था।
अब सकट है, सकटमोचन तेरे सिवा न कोई।
दुख से अध नयन है।—लोचन तेरे सिवा न कोई।

दयासिधु हे, हम पर तूने किया अनुग्रह भारी।
यह तेरी ही दया मिली हमको स्वतत्रता प्यारी।
अब इतनी-सी दया और हो स्वतत्रता का रक्षण
हम कर सके।—इसे न छीन ले कही प्रेम-विरहित जन।

यह तेरी ही कृपा कि मेरे मन मे जिज्ञासा है
यह बतला दे, तेरे अधिकारो की सीमा क्या है।
उत्तर देना तेरे ही हित मे है।—तू कैसा है
इतना होने पर भी हम पर दया नही करता है!

३६]

यदि तेरा होना सच है, सच यदि तेरी सत्ता है,
असत् नहीं यदि धर्म, धर्म की यदि सत् बलवत्ता है;
तो न 'यतो धर्मस्ततो जय'[1] क्यों चरितार्थ हुआ है ?
यह वर दे विश्रांति-पूर्व उतरे, जो कठिन जुआ है।

---

[1] पृ० ३४ की पा० टी० दे०।

स्वतंत्रता की प्यास

कब बुझेगी उग्र प्यास, स्वतन्त्रता की कब बुझेगी प्यास ?
मोहमाया दासता की कब मिटेगी, हम न होगे दास ?
कब कटेगी विकट हथकडियॉ, पडी है जो कि मॉ के हाथ ?
कब टलेगे सकटो के भार ये, अवनत न होगे माथ ?
आप आये थे यहॉ उस दिन कि रच दे एक भारतवर्ष !
आपने साधा, ग्रहण कर, आर्य-जीवन-पथ का उत्कर्ष !
आप है यदि, आपको यदि है कृपा तो विजय निश्चित है !
फिर भला क्या सत्य के हम सेवियो को खेद समुचित है ?

आपके जो भक्त, वे रोगो-अभावो से रहे क्यो ग्रस्त ?
यश - श्रेय - पात्र हो जग के अनधिकारी अपात्र समस्त ?
शरण मे आये हुओ से कर छुडाना, यह कहॉ की बात ?
बिलखता शिशु दूर कर दे माँ भला ? — ना, यह कहॉ की बात ?
यह नही क्या आपका कर्त्तव्य है, कर दे अभय का दान ?
आर्य ! —क्या भूले हुए है आप अपना धर्म, अपनी आन ?
क्रूरकर्मा दानवो के निष्करुण सहारकारी आप !
शूरवीरो के शिरोमणि, आर्यजन के तापहारी आप !

स्वतंत्रता देवी की स्तुति

जिन्हे नही है प्राप्त तुम्हारी कृपादृष्टि का दान,
वे चाहे कुबेर-से ही क्यो न हो अतुल धनवान्,
चाहे कितने पढे-गुने हो, बहुश्रुत हो विद्वान्,
चाहे कैसे भी विशिष्ट हो, विरल गुणो की खान,
चाहे कुछ हो, कैसे भी हो, हो सब भांति महान्,
उनका जीवन व्यर्थ, व्यर्थ है उनका सब सम्मान !
एक कृपा के बिना सभी गुण, सब धन धूलि समान !
कोई भी उपलब्धि क्यो न हो, होगी वह निष्प्राण,
शव पर सजा हुआ आभूषण ही उसका उपमान !

देवि, तुम्हारा तेज न हो तो, कोई भी हो देश,
उसे देश की सज्ञा पाने का अधिकार न लेश !
यदि न रहे वह तेज, देश मे प्राण न रहते शेष
और न ही सभव कि वहाँ हो विद्या का उन्मेष !
वहाँ न पा सकती विकास की किरणे कभी प्रवेश !
काव्य-सृष्टि के लिए वहाँ क्या सभव मनोनिवेश ?
वहाँ कला क्या और वेद क्या ? जिन्हे न हो प्रणिधान,
देवि, तुम्हारे रक्षण मे, पापी है वे हतमान !

मानव-मानव समान, सब समान।
वधमुक्ति। वधमुक्ति। वधमुक्ति।

नारियाँ न तुच्छ, तुच्छ वह विधान
जो न दे उन्हे उचित, समान मान।
गृहजीवन का है वह सन्निपात,—
वह विमूढता कर दे भस्मसात्।
मातृजाति दासता-विमुक्त हो।
मातृजाति दुर्दशा-विमुक्त हो।
जीवन-सगिनियो को सग ले,
नर भविष्य-पथ पर बढे चले।
वधमुक्ति। वधमुक्ति। वधमुक्ति।

हम सब समान है, समानता का आया युग, आया।
मिट रहा कपट, निश्छल जनता का आया युग, आया।
जो सच्चे है, वे बडे।—उन्हीका आया युग, आया।
यह प्रलय-काल दुर्जन कपटी का।— आया युग, आया।
आओ नाचे-गायेंगे जी भर, मोद मनायेंगे।
आनद-छद-मय स्वतत्रता पर मोद मनायेंगे।

हो श्रमिक-कृपक जनता का सादर वदन - अभिनदन।
हो परजीवी का घोर निरादर, तोदन, अपनोदन।
अब निष्फल निरुद्देश्य श्रम कर हम श्रात नही होगे।
बनकर अयोग्य-जन के परिचर हम क्लात नही होगे।
आओ नाचे-गायेंगे जी भर, मोद मनायेंगे।
आनद-छद-मय स्वतत्रता पर मोद मनायेंगे।

है इसी देश के वारिस हम सब, इसका बोध मिला।
यह देश हमारा ही तो है, अब इसका बोध मिला।
इस पर अधिकार हमारा है।—हम नही किसी के दास।
बस एक पूर्ण-प्रभु जग का है।—हम एक उसी के दास।
आओ नाचे-गायेंगे जी-भर, मोद मनायेंगे।
आनद-छद-मय स्वतत्रता पर मोद मनायेंगे।

यह न भूलो उसी भूमि के पुत्र हो!

प्रत्न भारत वही भासमय देश है,
विश्व के भाल का जो सनातन तिलक,—
यह न भूलो, उसी भूमि के पुत्र हो!

जिस प्रतन भूमि के भूमि-सीमात पर
भूधराधिप हिमालय नभोभेदकर,
अन्य सीमात सन्नात है सिंधु से,
दुर्ग-परिखीकृता सर्ग से भूमि जो
शत्रुगण के लिए त्रासमय देश है,—
यह न भूलो उसी देश के पुत्र हो!

सिंध, गगा कलिदात्मजा, नर्मदा
तुगभद्रादि नदियाँ सदानीरदा,
प्रस्थ, वनराजि-धनराशि प्रचुरा धरा,
उपवनोद्यान-मय पुष्प-फल-शालिनी,
झील-झरनो, प्रपातो, सरो निर्भरा,
तु ग-गिरि-शृ ग-सघात,—क्या-क्या नही?—
भव्य अपरूप सुषमांक भारत-मही!
यह न भूलो इसी देश के पुत्र हो!

× × ×

विश्व मे सर्ग-सुषमा अतुलनीय है
श्रीमती भूमि की!--शब्द की सपदा
जो मिली है मुझे, वह अपर्याप्त है
वर्णनातीत-वर्णन कहाँ तक करूँ?
किंतु केवल निवेदन यही इष्ट है

यह न भूलो इसी भूमि के पुत्र हो !

मातृ-भू की व्यथा की अकथ है कथा
क्रूर, निष्ठुर, घृणित वृत्ति के पातकी,
शील-औदार्य-गुण-ज्ञान से शून्य-धी
आक्रमी म्लेच्छ से क्लेश है पा रही !
दैत्य ये, स्वर्ग पर आधिपत्याग्रही !
सैन्य-वन्याप्लुतातक का राज्य है !
मदिराखडि ये, वेदनिदा-मुखर !
बालवध, वृद्धवध और गोवध-अधम
अधराधुध ये देश मे कर रहे !
है निरापद न अबला बलात्कार से,—
लाज उसकी विगतलज्ज ये लूटते !
विप्र के यज्ञ मे विघ्न ये डालते !

× × ×

आततायी हमे यो सताते रहे
और हम यो सहन कर दुराचार को
नारकी-तुल्य जीवन बिताते रहे
तो भला कौन जीवन कहेगा इसे ?
ये विजय-गर्व मे मत्त पापी अधम !—
चूम इनके चरण क्या जिये जायँ हम ?
आयु तो है क्षणिक, बुलबुले की तरह !
जन्म यदि है हुआ तो मरण भी अटल !
जन्मभू-ध्वसकारी पतित म्लेच्छ है,
जो मिटाना नही चाहता हो इन्हे,
वह भले मृत न हो किंतु जीवित नही !
आत्मसम्मान खोकर, विगतलज्ज हो,

शत्रु की दासता - वृत्ति स्वीकारना
हीनता है,—किसे प्रेय होगी भला?

× × ×

पार्थ-से, कृष्ण-से, भीम-से, द्रोण-से,
भीष्म-से, राम-से देश के सूरमा
जो महाकीर्तिशाली पुराकाल के
हो गये हैं,—सहायक हमारे सभी!
भूमि को स्वर्ग, आओ, बनाये!—विजय
हो रहेगी हमारी,—असंदिग्ध है!
आशिषे मुनिवरो की सदा साथ है!
म्लेच्छ रिपुवर्ग को ध्वस्त, आओ, करें!

'गोखले स्वामी' का भजन[1]

जान ली मैंने मलिन-मन मोर्ले की चाल रे।
जानते ही खिल उठी मेरे हिये की डाल रे।
डाल के खिलते न खिलते लग गया फल एक रे।
फल लगा तो लग गई फल पर हिये की टेक रे।
टेक से चिता हुई यह फल पकेगा या नही ?
पक सका तो ठीक, पर सडकर न गिर जाये कही।
और सडने से बचा भी तो लगेगा हाथ क्या ?
क्या न कपि कर्जन लपक लेगा हिये का फल पका ?
क्या प्रशासन कुतर डालेगा न बनकर गिलहरी ?
हाय, क्या निश्चय कि फल होगा मुझे हासिल ?—हरि।
यदि मिला तो खा सकूंगा क्या उसे निश्चित रे ?
क्या नही हिचकी उठेगी फल गले से बिन-तरे ?

---

[1] १९०७ की सूरत कांग्रेस मे लोकमान्य तिलक का भाषण सुनकर भारती उन्हे गुरु मानने लगे थे। प्रस्तुत कविता मे उनके विरोधी नरम-दल के नेता गोखले की नीति मे निहित अनिश्चय, सशय, भय और मुर्दादिली पर व्यग्य है।

दासता के अधिकारी दास[१]

दासता के अधिकारी दास!
तुझे क्या स्वतन्त्रता की प्यास?
रहा है दास, रहेगा दास!—
योग्यता कितनी तेरे पास?— दासता के अधिकारी दास!

मिटे क्या जातपाँत के वाद?
अभी क्या सुलझे धर्मविवाद?
माँगता है किस मुँह से न्याय?
अबे जा, फिर न फटकना पास!—दासता के अधिकारी दास!

दास तू, तेरा भीरु हृदय!—
हुआ क्या उसमे पुंस्त्व-उदय?
टुकड़खोरी की टुच्ची टेव
छुटी या मिटी टूक की आस?—दासता के अधिकारी दास!

तुझे जलयान यान स्वीकार?
करेगा सात समुंदर पार?

---

[१] स्वराज्य-प्रार्थी भारतीय से गोरे अधिकारी का कथन।

वहुत है कुत्ते को कतवार ?
न हो प्रभुता के लिए उदास !—दासता के अधिकारी दास !

बढाया कुछ आपस का मेल ?
क्षुद्रता अब न सकेगा झेल ?
छुटा तेरा आलस का रोग ?—
काम का नाम न देता आम ?—दासता के अधिकारी दास !

देखकर वर्ण किसी का गौर
पसीना तुझे न आता और ?
भूल जा स्वतन्त्रता का नाम ,—
तुझे, सच, वह न आयगी रास !—दासता के अधिकारी दास !

चलायेगा कैसे तू देश ?
ज्ञान है राज-काज का लेश ?
चला भी जा, कर अपना काम
लगा पहरा कि खोद ले घास !—दासता के अधिकारी दास !

सैन्य-सचालन की है शक्ति ?
जो भरा करके सेवा-भक्ति ?
क्षुद्र का उचित क्षुद्र ही कर्म
भद्रता उसे गले की फाँस !—दासता के अधिकारी दास !

हम क्या कर सकते है ?[१]

वडे विवश है !—हाय क्या करे ?—बुरा हाल है !
मालिक, यह सारे जग से न्यारा कमाल है !

एक तिलक[२] के कारण सारी खुराफात है !
भले-बुरे की कोई सुनता नही वात है !
जहाँ जाइए, दुष्ट गोष्ठियाँ जुडी वही हैं !
वच्चो तक मे डर का कोई नाम नही है !

वडे विवश हैं !—हाय क्या करे ?—बुरा हाल है !
मालिक, यह सारे जग से न्यारा कमाल है !

जहाँ विदेशी वस्त्र, रोप की आग वही है !
कहो कि 'यह-सब उचित नही' तो कुशल नही है !
सुनते ही ये दूर फेकते हैं लनियाकर !
कुछ 'वदे-वदे'[३] जपते रहते गा-गाकर !

---

[१] विदेशी-वस्त्र-वहिष्कार आदोलन मे विमूढ राजकर्मी के मनोभाव का कल्पित चित्र ।

[२] लोकमान्य तिलक (वाळ गगाधर तिळक) ।

[३] 'वदेमातरम्' की ओर सकेत ।

अर्थहीन कुछ कहकर उछल-उछल पडते है।
एक न सुनते, मालिक, हम क्या कर सकते है।

बडे विवश है।—हाय क्या करे?—बुरा हाल है।
मालिक यह सारे जग से न्यारा कमाल है।

गौरांग प्रभु विंच[1] का वचन

आज देश मे आग लगी है, आग लगाई तुमने है।
स्वतत्रता की लगन जगी है, लगन जगाई तुमने है।
नद्ध करूँगा तुम्हे, वद्ध कर दूँगा कारागार मे।—
सिद्ध करेगा त्रास कि कितना वल है इस सरकार मे।
आज देश मे आग लगी है —

किये सभाओ के आयोजन, घोपण 'वदेमातरम्'।
दोपारोपण इतने किये कि मानो दोपागार हम।
हमे भगाने के विचार से चलवाए जलयान तक।
माया भी भरपूर वटोरी है घलुए मे वेधडक।
आज देश मे आग लगी है —

तथ्य वताकर गरमाया है कायर तक के खून को।
कई तरह से भग किया है सरकारी कानून को।

---

[1] तिरुनेल्वेलि का तत्कालीन अँगरेज कलक्टर विंच, जिसने 'कप्पलोट्टियत्तमियन्' ('जहाजरान तमिल') देशभक्त उद्योगपति व० उ० चिदवरम् पिल्लै को अपनी कोठी पर बुलाकर गिरफ्तार करवाया था।

दीन बने रहने को हीन बताकर तुम धिक्कारते ।
धिक्कारो के साथ हमे भी सदा रहे ललकारते ।
आज देश मे आग लगी है —

पराधीन तो क्लीव, तुम्हीने पौरुष का सचार किया ।
दॉत-निपोरी और दीनता से इनका उद्धार किया ।
निर्धनता मे मगन जनो को सब्ज बाग दिखलाया है ।
छीन तोप, दे लोभ, मोह-निद्रा से इन्हे जगाया है ।
आज देश मे आग लगी है —

पर-सेवा मे ही प्रसन्न थे ये, तुमने उकसाया है ।
यश का स्वाद चखाया, अपयश के विरुद्ध भडकाया है ।
आलस-पक इन्हे प्रिय था, उद्यम का मार्ग दिखाया है ।
दूर निराशा की है, नाना-विध उद्योग सिखाया है ।
आज देश मे आग लगी है —

यह स्वराज्य की प्रीति तुम्हीने तो सर्वत्र जगाई है ।
नये बीज बोकर बजर मे खेती नई उगाई है ।
क्षुद्र शशक से सपादित हो सिह-कर्म कब सभव है ?
तुम पालन कर पाओगे विद्रोह-धर्म, कब सभव है ?
आज देश मे आग लगी है —

अब गोली से बात करूँगा, तुमको सबक सिखा दूँगा ।
भून भून कर रख दूँगा, विप्लव का मजा चखा दूँगा ।
पडे-पडे सडते रहना, कारा मे तुमको डालूँगा ।
प्रतिहिसा खुल खेलेगी,—बदला लूँगा, बदला लूँगा ।
आज देश मे आग लगी है —

देशभक्त चिदंबरम् पिल्लै का प्रतिवचन[1]

देश हमारा अपना है।—इसमे विदेशियो का क्या है?
उनकी सेवा करे, खट मरे, डरे रहे,—ऐसा क्या है?
देश भले कोई हो, ये अन्याय नही चल सकते है।
क्या न देखता दैव?—हमे दुर्दैव नही छल सकते हैं।
देश हमारा अपना है।

मरते दम तक मुक्ति-मत्र गायेगे 'वदेमातरम्'।
माँ को शीश नवायेगे, गायेगे 'वदेमातरम्'।
माँ प्राणो से प्यारी है, प्यारा उसका गुणगान है।
इसमे कैसा दैन्य भला, इसमे कैसा अपमान है?
देश हमारा अपना है।

दिन-दुपहर को लुटे?—पराये सब निधि हड़प किये जाएँ?
—और हाथ पर हाथ धरे हम खो दे सकल सम्पदाएँ?
मरते रहे, बिलखते रहे?—यही कर्त्तव्य हमारा है?
पौरुष नही रहा?—जीवन क्या हमको इतना प्यारा है?
देश हमारा अपना है!

---

[1] कलक्टर विंच को। (यह कविता पूर्ववर्ती कविता 'गौराग प्रभु विंच का वचन' के सदर्भ मे पठनीय है।)

हम भारत के तीस कोटि जन अपमानो के गाहक है ?
हम क्या मानव नही ?—निरे कुत्ते है, शूकर-शावक है ?
केवल तुम्ही मनुष्य ?—न्याय यह नही, निपट वेशर्मी है ?
नीति नही, यह तो अनीति है, धर्म नही हठधर्मी है ।
देश हमारा अपना है ।

प्रेम हमारा भारत से है ।—यह तो कोई पाप नही ।
प्रेम हमारा देख-देखकर तुम्हे उचित सताप नही ।
हम अपना दारिद्रय मिटाते ।—यह कोई अपराध नही ।
कोप अकारण ,—तुम्हे लूटने की तो कोई साध नही ।
देश हमारा अपना है ।

एक-मात्र निस्तार-पथ आपस का मेल हमारा है ।
और न कोई मार्ग खुला है,—हमने वहुत विचारा है ।
चाहे जो भी अत्याचार करो, हम दलित नही होगे ।
अपने पथ पर वढे चलेगे ।—चित्त विचलित नही होगे ।
देश हमारा अपना है ।

वोटी-वोटी भले काट लो, गोटी लाल नही होगी ।
साध पुजेगी नही ,—सफल कोई भी चाल नही होगी ।
महाभक्ति जो प्रज्वलत है आज हमारे अतर मे,
वह न वुझेगी ।—शाति नही पाओगे विप्लव के घर मे ।
देश हमारा अपना है ।

भंड देशभक्त

मन के दृढ़ नहीं, न धीर हैं ! हैं खरे न ये गंभीर हैं !
ये वाचकता के धनी, शुकी[1] केवल वचनों के वीर हैं !

हैं सभा-चतुर, कब थकते हैं ? जो मन चिल्लाते-बकते हैं !
घर जाते ही सब साफ, शुकी ! लौ लगा कदापि न सकते हैं !

× × ×

ये 'देशी कपड़ा' जपते हैं, पर पुतलीघर पर नपते हैं !
मञ्चों में आम न फले, शुकी, —उन पर ये झूठ तड़पते हैं !

जिह्वा पर लिये नमक चमत्कार, ये नित्य लगाते हैं चक्कर !
शब्दों की माड़ी बुने, शुकी, करने का ज्ञान खाक पत्थर !

× × ×

बढ़ चले विदेशी त्रास-भार अबलाओं पर हो बलात्कार !
ये अबलाओं की भाँति, शुकी, छूते न बलाओं की कछार !

× × ×

---

[1] तमिल कविता की एक उप-विधा 'किळिक्कण्णी' है, जिसमें कवि अपना वक्तव्य 'शुकी' से निवेदित करता है। इस उप-विधा में हर तीसरे चरण का अंतिम शब्द 'किळिये' ('हे शुकी'—संबोधन पद) होता है। प्रस्तुत कविता भी 'किळियकण्णी' (शुकी त्रय) है।

उत्साह-स्फूर्ति नही किंचित् ! ये सत्य की लगन मे वंचित !
ऐसे लोगो के लिए, शुकी, क्या क्षण भर भी जीना समुचित ?

जिनको न आत्मसम्मान इष्ट, सबसे बढकर बस प्राण इष्ट,
जो ऐसे पामर लोग, शुकी, उनका जग मे रहना अनिष्ट !

मदिरा मे डूब रहा हो मन, मुख पर हो 'शिव-शिव' नाम-रटन,
इनका 'वंदेमातरम्', शुकी, वैसा ही निपट लोकवचन !

'प्राचीन','सनातन' और 'प्रतन' जपकर जतलाते भावुकपन,
पर वस्तु-सत्य प्राचीन, शुकी, क्या था क्या जाने ये जड-जन ?

× × ×

गुरु गोविंद जी

विदित पचनद देश।
वहाँ के गुरु-मणि
क्षात्र तेज के पुज, 'सिह' कुलराशि-प्रवर्त्तक,
ज्ञान-सिधु, उत्तम कवि,
नभ टूटे या बिखरे,
वज्र गिरे या कुछ भी हो, पर जो बिना-डरे
सदा समर-सन्नद्ध, सदा अविचल-मति,
खड्ग-हस्त युयुधान वीर सेनापति,
त्रस्त देश के त्राता गुरु गोविद सिहजी।

× × ×

क्षत्रिय-पुत्र,
समागत शिष्य-जनो—'सिहो'—को
सबोधित कर,
आशिष देते हुए मुदित-मन
बोले
"एक समस्त जगत् का है अकाल-जगदीश्वर।—
हम जितने भी जन जन्मे है जगतीतल पर,
सब-के-सब उस एक पिता के पुत्र, सहोदर।

सब समान, सब तुल्य-मान, सब है स्वतन्त्र नर।
शिष्यो, सिहो,

इस क्षण से तुम सब समान हो।
एक तुम्हारी जाति, धर्म, कुल, कर्म—एक है।
सब प्रकार से तुम समान हो।
भेद मिटा दो, भेद मरण है!
एक हो, रहो सदा एक तुम, ऐक्य शरण है।
ऐक्य-बोध के तत्त्व-बोध का यह शुभ क्षण है।
आर्य-जाति मे
पृथक् सहस्र-सहस्र जातियो का विधान जो,
वह मिथ्या है।
उस मिथ्या बहुवाद-वाद से जो चिपके है,
उनको छोडो,—

तुम आपस मे एक, तुम्हारी जाति एक है।
अद्वितीय अद्वैत यही सच्चा विवेक है।
एकेश्वर, सन्नीति, सत्य का, स्वतन्त्रता का
एक धर्म है और धर्म की एक पताका।
इसी धर्म के परिपालन का व्रत सच्चा व्रत।
व्रतपालन को उठो वीर, रणधीर, सुमहत।
उठो वीर,

जो भी अनीत-दुर्नीति-भीति है,
जो भी अत्याचार और अन्याय-रीति है,
उसे मिटाकर दम लो, पालन करो वीर-व्रत।
वीर तुम्हारी जाति, वीर, रणधीर, सुमहत।
द्रोह कृत्य से जिसे न कोई लाग, न परिचय,
वही तुम्हारी जाति वीरधर्मी, दृढ निश्चय।

'कघा'-मृष्ट अकृत्त 'केश' ज्यो केसरि-केसर,
सदा कसा 'कच्छा,' लोहे का 'कडा' और कर
शोणित-धार 'कटार' पुनीत 'ककार' पाँच ये,
नित्य-धार्य है धर्मलिग जिस वीर जाति के,
वही तुम्हारी जाति वीर, रणधीर, सुसहत!
रहे न कोई राजा, कोई महाराज बन,
राज्य रहे बस केवल अलख-अकाल-पुरुष का,
सभी उसीकी प्रजा,
सभी आपस मे भाई, सुख-दुख के सगी-साथी हो,
बस अधर्म ही एक शत्रु हो सबका घोपित,—
यह जिसका आदर्श,
इसी सिद्धात-भित्ति पर
जनता का गणराज्य गठित जिसको करना है,
वही तुम्हारी जाति वीर, रणधीर, सुसहत!
धर्म-द्वेष मत करो, अधर्म सहन न करो तुम,
मातृभूमि का यश गाकर तुम बनो यशस्वी,
और यशस्वी बने रहो, जब तक ससृति है!"
इतना कहकर गुरुमणि चुप हो रहे।
शिष्यगण
गुरु-चरणो मे नत होकर जयकार कर उठे
('वाहि गुरु की फतह')!
गुरु गोविंद सिंह का नव-स्वीकृत धर्मध्वज
गगन-लोक की ओर उठा, फर-फर फहराया!
विश्व-प्रशसित हुआ धर्म का ध्वज!
अधर्म के
आसन-सा औरगजेब का शासन डोला
और कलुष-छाया उसकी मिट चली लोक से!

उन दाता[1] दादाभाई नौरोजी की जय !—
शीश नवाता हूँ मैं उनके श्रीचरणों पर !

यह अशीतितम जन्म-जयती हो मगलमय !
जिये अनेक शरत् मगलमय हो प्रति-वत्सर !
पुण्य जाति-उद्धार-कार्य में हो सफलाशय !
दे उनको सद्बुद्धि, अनय जो करते हम पर !
भरतखड की सभी जननियों का भाग्योदय
हो !—सबके सुत हो नौरोजी-से गुन-आगर !
चिरजीव हो सब, ज्योतिष्को-से ज्योतिर्मय !
मेरा शीश प्रणत हो सबके श्रीचरणों पर !

---

[1] तमिल लिपि के (उदित्) स्पर्श-व्यजनो मे घोप अननुनासिक वर्ण (दस मे से) केवल एक 'ज' ही है, जो एक अत्याधुनिक उद्भावना है। इस कारण 'दादाभाई नौरोजी' को 'तातापाय् नवुरोजी' ही लिखते हैं। भारती ने इसी 'ताता' को लेकर श्लेष की सयोजना की है।

सौहार्द-मधु से छलकता सुमन नाम!
पुरुषत्व का अर्थ सकेत-घन नाम!

जय जय 'तिलक' के अमर नाम जय हो!
दु शासनाराति-क्षय हो, अभय हो!

महात्मा गाँधी पंचक[1]

जियो जियो, चिर जियो हमारे देवता !
सबसे दीन दलित यह भारत देश है,
स्वतन्त्रता छिन गई, मलिनतम वेष है,
नष्ट-भ्रष्ट गत गौरव खँडहर-शेष है,
इसके उद्धारक हे प्यारे देवता,
जियो महात्मा गाँधी युग-युग जियो, जियो !

'देश-बंधु हों मुक्त दासता-जीवन से,
धन, समाज-उन्नयन, ज्ञान-विद्या पाकर
वे जग के नेता बन बढ़ें प्रगति-पथ पर',
मन्त्र दिया तुमने यह स्वतन्त्रता-जित्वर,

---

[1] मार्च १९१९ में गांधीजी मद्रास में थे। एक दिन भारती ने उनसे मिलकर अनुरोध किया कि आज आप मेरी सभा का सभापतित्व करें। गांधीजी को किसी और समाज में जाना था। उन्होंने कहा "कृपया अपनी सभा कल रख लें।" भारती को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने गांधीजी को आशीर्वाद देकर ही संतोष किया। गांधीजी के पास से लौटकर उन्होंने उसी आशीर्वाद को "महात्मा गांधी पंचकम्" के रूपमें पद्यबद्ध किया।

हुए अग्रणी जग के, धनी यशोधन से ।
जियो यशस्वी गांधी, युग-युग जियो, जियो ।

नागपाश भीषण है, तुम उसके भेदक
सजीवन लाने वाले, उद्धारक तुम,
वज्र झेलने योग्य छत्र के धारक तुम ।
क्या कहकर स्तुति करे ?– हमारे तारक तुम ।
परवशता के विकट रोग के तुम्ही भिषक् ।
सरल-मुक्तिपथ-पथकार तुम, जियो, जियो ।

हिंस्र-प्रकृत जन को भी अपना ही प्रतिमान,
जीव जगत् को प्रभु-स्वरूप, प्रभु की सतान
मान आचरण करना सहज न तत्त्वज्ञान ।
अधम समर-हिंसा मे उलझी ग्रंथि समान
राजनीति मे उसे गूंथने का प्रणिधान
है अपूर्व विक्रम ।—सपादित किया । जियो ।

हिंस्र-समर-पथ को निंदित कर, परम प्रशस्त
सत्य-धर्म सेवा-धर्मी का मार्ग लिया ।
असहयोग के उस पथ का सधान किया
जिस पर भारत के भविष्य की है दुनिया ।
भूल जाय अब विश्व परस्पर-द्रोह समस्त
और तुम्हारा शाति-मत्र ले जिये ।—जियो !

जयति वेल्जियम

धर्म-विजित तुम, प्रवल विदेशी के हाथो
 अत्याचार-अधर्म नही कर सके सहन !
डटे सूप से वाघ हाँकती पुलियन[1] -से,
 निर्वल होकर भी महत्त्व का किया वरण !

गत-गौरव थे, शत्रु-सैन्य-वन्या आई
 पर न उखाड सकी वह धृति के सुदृढ चरण !
डटे देश-जन-स्वत्व-सुरक्षा के रण मे
 दृढनिश्चय !— श्रेयसी कीर्ति का किया वरण !

गत-प्रतिष्ठ तुम, शत्रु गगनचुवी यश का
 धनी विक्रमी था, फिर भी तुम कृत-सकल्प,
भय से हार न मान, समर मे डटे रहे !
 जितना कुछ कर सके, वीरता वही अनल्प !

---

[1] प्राचीन तमिप काव्याख्यायिका मे वर्णित पुलैय (पुलिय) जाति की वीरागना। कुटी के वाहर अनाज पछोर रही थी कि उस पर वाघ झपटा। भीतर भागने के वजाय वह हाथ के सूप को ही शस्त्र वनाकर वाघ से भिड गई।

पराभूत तुम हुए शौर्य के रहते भी,
पर न हुए अभिभूत !— धन्य तुम, वीरवरो !
महानाग था शत्रु, 'कीट' ही कहा उसे,
अवसर पाते ही ललकार उठे 'ठहरो !'

गर्वमत्त-सत्यावल-प्लावित होकर भी
यह न विचारा तक कि पराजय वरण करो !
युक्ति पलायन की, नति की, छिप जाने की,
सोची तक भी नही !—डटे, गरजे · 'ठहरो !'

नया रूस[1]

जार पातकी था। जघन्य था शासन
क्रूर हिरण्यकशिपु-सा। सज्जन बुधजन
उसके रिपु थे। त्रस्त, 'हाय'-धन, अशरण,
फिरते थे असहाय। दमन निष्कारण
होता रहता। न्याय नगण्य बना था
तृण-सा। धर्म विपन्न। पुण्य सपना था!
अनुदिन बढ़ते कपटाचार, अमगल,
थे भुजग-से जार राज था जगल!

धरती का सौभाग्य जगाने वाला
चिर-निरन्न था, अन्न उगाने वाला!
कर मलते थे लोग रोग पलते थे,
खल के घर घी के दीये बलते थे!
चाटुकार मिथ्याजीवी थे धनपति!
सत्यवादियों की थी भीषण दुर्गति

---

[1] १९१७ की रूसी समाजवादी क्रान्ति का समाचार मिलने पर रचित।

प्राणदंड, कारा, प्रचड निर्यातन,
प्रेतारण्य 'सिबीर्'[1]-खड'-निर्वासन।

मुँह खोले पर कारावास नियम था।
यदि प्रतिवाद किया, वनवास नियम था।
सिहासन-धर्मी अधर्म ने काटी
न्याय-धर्म की जड, मेटी परिपाटी
जब नय की,—तब पराशक्ति-माँ[2] का मन
द्रवित हो उठा। हृदय सभक्ति निवेदन
करने पर जो दृष्टि ताप-त्रय-नाशन
खुलती है, खुल गई कट गये बधन।

गिरा जार। ढह गया कुकर्म-हिमालय।
गिरे अधर्मी परिचर, धूर्त, दुराशय,
यथा-समय अयथार्थ चाटु-वचनो के
तक्षण-दक्ष कुमत्र। वृक्ष ज्यो झोके
झेल न पाये झझाओ के। झक्कड
चला क्रान्ति का,— भहरा पडे धडाधड।
पलक मारते, सारा का सारा वन
हुआ ध्वस्त-विध्वस्त,— रह गया ईधन।

---

[1] 'साइबेरिया' के रूप मे हमारा परिचित विशाल मेरु-हिम-मरुदेश। भारती का सविभक्ति 'मिबेरियिले' मूल रूसी उच्चारण 'सिबीर्' (या 'सिबीय्') के निकटतर है।

[2] भारती पराशक्ति के भावुक भक्त थे।

गन्ने के बगानो में

गन्ने के द्वीपमय बगानो मे,
दूर नही, गन्ने के द्वीपमय बगानो मे —

गन्ने के द्वीपमय बगानो मे
थक-थक कर चूर वे निढाल हुई जाती है।
हिन्दी है, मन की दुखिया, तन से
दिन-दिन ककाल हुई जाती है।
उनके दुख की दवा न कोई है?
कोई निस्तार का नही उपाय?
कोल्हू के बैलो की-सी गति है
अव-श्रम, विषण्णातर, निस्सहाय
गन्ने के द्वीपमय बगानो मे।

कहते है, अबला-जन के दुख से पत्थर तक भी पसीज जाता है।
तुम नही पसीजे हे देव।—तुम्हे अश्रुधार-तर्पण ही भाता है?
दक्षिण-सागर के उस अनदेखे द्वीप के विरल-मनुज
इक्षु-वनो मे स्त्रियाँ
आँसू मे मिट्टी है घोलती, घुनती अवसन्न मनो मे स्त्रियाँ
गन्ने के द्वीपमय बगानो मे।

'कब होंगे मातृभूमि के दर्शन ?'—पूछती ही रहती हे सिसकियाँ।
ग्रॉसू-तर्पण स्वदेश की सुधि का करती कुछ कहती हे सिसकियाँ।
पवन। हमारी स्वदेश-वहनो की दु ख कूप मे गुजित सिसकियाँ
तुमने तो सुनी, तुम्ही दुहराना,— उनमे ग्रब उतना भी दम कहाँ।
गन्ने के द्वीपमय वगानो मे —

भग्न-हृदय वे वलात् धर्पण से, क्रूर लोमहर्पण ग्रतिचारो से
घुट-घुट मरती है ग्रशरण, ग्रनाथ, निस्सहाय, पीडित दुख-भारो से।
ग्रव भी क्या कुछ न करोगी माता ?—वढती ही जाये यह वदहाली ?
कृपादृष्टि ग्रब करो उधर भी हे वीर्य-कराली चामुडे, काली।
—गन्ने के द्वीपमय वगानो मे।

विनायक चतुर्मणि-माला[1]

न जानूं मैं कोई अविधि तप की या विनय की।
न ही जानूं कैसी सुखद ममता है हृदय की।
थके-हारे जी से भटक जग मे मैं थकित हूं।
न कोई आशा है कि 'शिव' मिल पाये।—चकित हूं।
अनोखी आभा से ललित मणि-धारी, अभय दो।
दया-सिन्धो, ब्रह्मन्, प्रणव-तनु-धारी, अभय दो।

× × ×

विराम कवि-कर्म मे निमिष का न लाऊँ कभी।
स्वदेश-परिचार मे न अवकाश पाऊँ कभी।

---

[1] चार परस्पर-भिन्न छदो के पद चक्र-क्रम के आवर्त्तन से ग्रथित करके 'चतुर्मणि -मालाएँ' ('नान्मणिमालै') रचना तमिष की विशिष्ट पद्य शैली है। प्रस्तुत 'चतुर्मणिमाला' मे 'वॅण्वा,' 'कलित्तुरै' 'विरुत्तम्' और 'अहवल्' नाम के तमिष छदो की चौकडी के दस आवर्त्तन है। यहाँ चालीस मे से तीन मणियाँ ही प्रस्तुत की गई हैं। अनुवाद के 'शिखरिणी,' 'पृथ्वी' और 'मालिनी' वृत्त क्रमश 'विरुत्तम्, 'वॅण्वा' और 'अहवल्' छदो के स्थान पर नियोजित हुए हैं।

स्वय अथक कर्म भी अथक तोसरा कर्म है।
रहूँ निरत। सिद्धि-दान गण-नाथ का धर्म है।

× × ×

गणपति, यह मेरी धृष्टता क्षम्य तो है?
अकथन गुण भाषा-वध मे बांधने की,
अवरण वर ऐसे आपसे मांगने की?
'चर अचर, समूचे विश्व के प्राण-धारी
तृण, तरु, पशु-पक्षी, कीट-भृङ्गादि सारे
दुख-विकल दशा से मुक्त हो ले, सुखी हो,—
यह फल सुकृतो का प्राप्त हो, पुण्य जागे',—
वर यह कृपया दो नाथ, देवाधिदेव!
शुभ-मति-नभ से ये घोषणाएँ करूँ मैं
'धृति-धरण सभी हो, प्रेम वाले सभी हो,
रुज-मरण-दुखो का नाश हो, स्वस्तियाँ हो,
सुख-मय भव-यात्रा हो, धनाभाव भागे,
हिल-मिल सब प्राणी चैन से आयु भोगे।'
प्रभु, सुन यह मेरी कामना, आर्द्र होके,
अभिमत वर दे दो, वाक्य बोलो 'तथास्तु।'
अभिमत वर दो हे आदिभू चद्रमौले।
अभिमत वर दो हे नित्य, हे शक्तिसूनो।
अशरण जन के हे आश्रयस्थान, वदे।

मुरुहा[1] ! मुरुहा !!

मुरुहा ! मुरुहा !! मुरुहा !!!
हे मयूर-वाहन मयूर पर आओ !
तीक्ष्ण शूल ले तीक्ष्ण-शूलधर आओ !
योग-क्षेम हो, योग-क्षेम-कर आओ !
सुयश, ज्ञान, धन धान्य, मान, दे हमे धन्य कर जाओ !
मुरुहा ! मुरुहा !! मुरुहा !!!

हे वेदो के वेद्य तत्त्व, विभु, आओ !
हे प्रताप, हे शौर्य, महाप्रभु आओ !
चिंता-सागर-मग्न हो रहे हैं जन,
चिंता-सागर सोख उबारो, दया सिंधु हे मुरुहन् !
मुरुहा ! मुरुहा !! मुरुहा !!!

परम ज्ञान ही स्वयं भव्य मंदिर है,
कृपा स्वच्छ माता है, गोद रुचिर है,
शूल लिये तुम अंक-विराजित मुरुहन् !
भक्तजनो को विगत शंक कर दो देकर नव-जीवन !
मुरुहा ! मुरुहा !! मुरुहा !!!

---

१ शिव के पुत्र देव-सेनानी स्कंद कार्तिकेय का तमिप नाम 'मुरुहन्' है। 'मुरुहा' संबोधन का रूप है।

हे गुरुवर, हे परम-पिता भव के सुत ,
तेज-गुहा के वासी हे भव-विश्रुत ,
हे सुर-गण-सेनानी, सिद्धि अमर दो !
तुम शरण्य केवल, अशरण हम, शरणागति का वर दो !
मुरुहा ! मुरुहा !! मुरुहा !!!

वेलवन्[1]-गीत

वेलवा, शरासन-वकिम भ्रू-भगिमा तुम्हारी,
गिरि चूर्ण हो गया था जिससे,—उस पर बलिहारी।
तॅम्मलै[2]-गहन का वृक्ष-रूप अपरूप तुम्हारा,
जिसने मधु-वेनी वळ्ळि[3] कामिनी पर मन वारा।
अति क्रूर दैत्य था सिहासुर[4], तुमने कौओ को
बलि दी,—चुगा दिया उसकी दो सहस्र आँखो को।
कर मुक्ता-निदी शुभ्र-स्मय सुन्दरी वळ्ळि का
छू पाये थे तुम विप्र-वेश धर, देव वेलवा।

× × ×

सम्मुख उज्ज्वल षण्मुख-नयनो को देख मिले सुख,
खिल उठे प्राण-मन, देख अभय की मुद्रा अभिमुख।
वेलवा, किया करते हो भक्त-जनो का रक्षण,
निर्मूल मिटाकर क्षुधा, रोग, क्षय, घातक भीषण।
थर-थर होते ग्रह-पिड, विखडित कोटि निशाचर,
तुम ऐसा दारुण अट्टहास करते, कुक्कुट-धर।
भैरवी महाविद्या है नाना-रूप-सभवा,
तुम हो उनसे सभूत तेज के पुज, वेलवा।

---

[1] कुमार स्कद का एक और तमिष नाम।
[2] दक्षिणाचल, 'मलयगिरि'।
[3] स्कद की प्रेमिका।
[4] 'सिकन्', सिहानन।

शुकी-संदेश

शुकी, हे शुकी, जाके उनसे कहोगी ?—
क्यो सुधि हमारी न ले ?

'तिल्लै-सभा'[1] के जो नटनाधिकारी है,
देवाधिदेव है जो, दश-भुज-धारी है,
जाके कहो उनके प्यारे कुमार से
'आनद हो, आ मिले !'
शुकी, हे शुकी, जाके उनसे कहोगी ?—
क्यो सुधि हमारी न ले ?

कुई-सरसी के तट, साँझ ढले पर,
जुही के वितान-तले, कान्त-कलेवर
प्रभु ने रचे खेल जो, क्यो भुलाये ?
सुधियाँ कलेजा दले !
शुकी, हे शुकी, जाके उनसे कहो तो
सुधि क्यो हमारी न लें ?

---

[1] चिदवरम् के मदिर का एक आँगन, जहाँ के 'सभा'-नायक नटराज हैं। यह 'सदेश' उन्ही के 'कुमार' के लिए है।

जिस दिन लिया 'मरु का पथ'[१] दुस्तर,
जो-जो कही हाथ मे हाथ लेकर,
जो-जो कही शूल की सौंह से, वे
बात स्मरण कर ले।
शुकी, हे शुकी, जाके उनसे कहो तो ·
क्यो सुधि हमारी न लें ?

---

१ तमिल कवि-समय के अनुसार बिछुड़न और विरह का प्रतीक।
यहाँ 'मरु का पथ' 'बिछुड़ने का समय' है।

मुझे 'काणि' भर खेत चाहिए

मुझे 'काणि'[1] भर खेत चाहिए
पराशक्ति हे,
खेत 'काणि' भर केवल !

'काणि'-खड के बीच विनिर्मित मेरा रगमहल हो
सुघड स्तभ हो, रम्य अटारी, सुधा सुधाशु-धवल हो !
'काणि'-खड मे एक कूप हो, मधुर कूप का जल हो ,
और नारियल के निकुज की घनी छाँह शीतल हो !
मुझे 'काणि' भर खेत चाहिए,
पराशक्ति हे, खेत 'काणि' भर केवल !

'काणि'-खड मे, माँ, दस-बारह पेड नारियल के हो
पत्तो से छन शुभ्र चाँदनी के मोती छिटके हो !
मेरा मन बहलाने को पिक करे मद मधु-कूजन ,
मेरा तन सहलाने को मृदु-शीतल बहे समीरण !
मुझे 'काणि' भर खेत चाहिए, पराशक्ति हे !

गीत-सगिनी भी कोई हो दोनो मिलकर गाये ,
हम दोनो की प्रेम-केलि मे गुँथे काव्य-रचनाएँ !
उस वन-प्रातर मे पहरे पर तेरा अभय प्रबल हो !
माँ, वाणी मे वह बल दो, जिससे जन-जन-मगल हो !

---

[1] तमिप क्षेत्र-मान इकाई। = $१\frac{३९}{१२१}$ एकड।

पराशक्ति[1]

मैं सुरम्य-दर्शन वर्षण-विन्यास देखकर
वर्णन करना चाह रहा था श्यामल घन का,
पर इतने में प्रबल वेग से उठा प्रभंजन,
कौंध चली बिजली, झनझनकर ठनका ठनका,
बरसा मूसलधार, आर्द्र झोंके हहराये,
और गा उठी स्वयं-स्फूर्त-स्वर मेरी वाणी
'पराशक्ति माँ की जय!—लीला है यह सब तो
पराशक्ति माँ की ही झंझा-झक्कड़, पानी!'

---

[1] नयी कविता का एक वाद।

मुत्तुमारि[1]

जगत्स्वामिनी मुत्तुमारि माता, हमारी मुत्तुमारि माता!
चरण-शरण मे आये है हम, मुत्तुमारि माता!

कई शत्रु दानव मन मे घुस बैठे है, माता, हमारी मुत्तुमारि माता!
देखा बहुत, बहुत सीखा, पर खाक नही आता,
हमारी मुत्तुमारि माता!
कही नही गति मिली, व्यर्थ श्रम, मुत्तुमारि माता!
चरण-शरण अब आये है हम, मुत्तुमारि माता!

रेह-सत्त से धुलता कपडा, मुत्तुमारि माता!
राख कमा देती है चमडा, मुत्तुमारि माता!
हीरा सान-खराद निखारे, मुत्तुमारि माता!
पर क्या है जो चित्त पखारे, मुत्तुमारि माता!

---

[1] महामारी की देवी 'विस्फोट-भेद-नाशिनी,' 'रासभस्था, दिगंबरी, मार्जनीकलशोपेता, शूर्पालंकृतमस्तका' शीतला, जिसके दुग्धाभिषेक के लिए दल बाँधकर चलने वाले काँवरधारी एक विशेष धुन मे स्तोत्र गाते चलते है। मूल कविता उसी लोक-धुन मे है (और 'मुत्तुमारी' की टेक उसमे बत्तीस बार लगी है!)।

आधि-व्याधि उपचार-साध्य है, मुत्तुमारि माता !
किंतु अज्ञता तो असाध्य है, मुत्तुमारि माता !
पर तेरी महिमा अनंत है, यह मत निर्भ्रम है,
हमारी मुत्तुमारि माता !
अशरण-शरण चरण तेरे है, शरणागत हम है,
हमारी मुत्तुमारि माता !

हे प्रभु, कृष्ण हे

खट्टे कैसे हो कच्चे फल मे, हे प्रभु, हे कृष्ण, तुम ?
और मधुर किस भाँति पके फल मे हो, प्रभु हे, कृष्ण हे ?
रोग-व्याधि मे कैसे निर्बल हो, हे प्रभु, हे कृष्ण, तुम ?
अनशन मे हो जीवन-सबल कैसे, प्रभु, हे कृष्ण हे ?

हो समीर मे इतने शीतल कैसे, प्रभु, हे कृष्ण, तुम ?
दाह-ताप किस भाँति दवानल मे हो, प्रभु हे, कृष्ण हे ?
इतने मलिन पंक मे हो मल कैसे, प्रभु, हे कृष्ण, तुम ?
और दिशाओ मे हो निर्मल कैसे, हे प्रभु, कृष्ण हे ?

भक्ति तुम्हारी कैसे मृदुतम होती, प्रभु हे, कृष्ण ?—तुम
दीनो के रक्षण मे सक्षम कैसे, हे प्रभु, कृष्ण हे ?
करते हो भक्तो का पालन कैसे, प्रभु, हे कृष्ण, तुम ?
करते दुर्जन-निग्रह-नियमन कैसे, हे प्रभु, कृष्ण हे ?

जय हो, जय हो सदा तुम्हारी ! जयी रहो प्रभु, कृष्ण, तुम !
इन श्रीचरणो पर बलिहारी ! जय हो, प्रभु हे कृष्ण हे !

सित-कमलासना

सित-कमलासन आसन वीणा-झंकृति स्वर हे।
रस-कविता-कवियों का अंतर ही शुचि घर हे।
सरल-मना मुनियों की करुणा-मयी गिरा में
तू श्रुति-गुह्य रहस्यों के अनुभव में, रामे।

मधु-ललना-गीतों में, शिशु की तुतलाहट में,
कोकिल की कूकों में, शुक-सारी की रट में
मोहक लय-रुचि, तू चितसारी, गोपुर, देवल,
सबमें निहित कला, आनंद-स्वरूपिणि, केवल।

कुल-देवी तू निश्छल उद्यम-रत शिल्पी की,
भीषण समरायुध-कृत् लोहकार, बढ़ई की,
धन-अर्जन-रत व्यवसायी की शुभदा देवी,
वीर नृपों, विप्रों को वरदा विद्या देवी।

दुरित-निवारण-कारण, भक्ति-प्रदा देवी तू।
आत्मोन्नति-कामी की प्राणों से प्यारी तू।
प्रण-पालक की सिद्धि-प्रदा, वरदा, अभिनंदित।
श्रमकारों की देवी, सुर-पूजित, कवि-वंदित।

नमिप-नाडु-वासी तुझको पूजें मिल-जुलकर।
तेरी पूजा की विधि सरल नहीं,—कुछ दुष्कर।
मन्त्रोच्चारण करके, पुस्तक पर पुस्तक धर,
चंदन-पुष्पाक्षत-पूजन पूजाडंबर भर।

सच्चा पूजन विद्या उद्द्योतित हो घर-घर।
गली-गली चटशाला, विद्या-मंदिर सुंदर
नगर-नगर में हों।—जो शिक्षा-शून्य नगर हों,
मिटा दिये जायें वे, भस्मसात् सत्वर हों।

अहित-नाशिनी गीर्वाणी वीणापाणी के
कृपा-वरण के केवल ये उपाय, वाणी के।

सुफला तरु-वाटिका, सुजल सर, अन्न-सत्र मठ,
मंदिरादि निर्माण, दान ये पुण्य धर्म-हठ।
ये सब यश के कृत्य, किन्तु है पुण्य पुण्यतर
करना शिक्षित उनको, जो हैं निपट निरक्षर।

धनी स्वर्ण दे, अल्प-वित्त जन स्वल्प वित्त दे
वह भी यदि न बने तो श्रम दे, वाक्, चित्त दे।
मधु-कंठी ललनाएँ वाणी के गुण गायें।
जैसे भी हो, निभे कार्य, हम ईप्सित पायें!

षट्-सखा[1]

ओम् शक्ति, ओम् शक्ति, ओम् पराशक्ति ।—
ओम् शक्ति, ओम् शक्ति, ओम् ।
ओम् शक्ति. ओम् शक्ति, ओम् शक्ति ओम् शक्ति ।—
ओम शक्ति, ओम् शक्ति ओम् ।

× × ×

पराशक्ति की महिमा वागतीत, निस्संशय ।
शक्ति हमे देगी वह ।—पराशक्ति की जय-जय ।
ओम् शक्ति, ओम् शक्ति ओम् ।
जयी शूलधर[2] की जय-शूरता सराहे हम ।
हट रे रिपु, आता है शूल सकल-शत्रु दम ।
ओम् शक्ति, ओम् शक्ति, ओम् ।
कंज-कुसुम-आसीना, वेद-बोध-दात्री वह ।
उसके पद-कंज शीश धर, कृतार्थ हो अहरह ।
ओम् शक्ति, ओम् शक्ति, ओम् ।
कालिय-फण पर नर्तित चरणो के गुण गाये ।
रस-मधु-मुख-मुखरित मुरली-स्वर पर बलि जायें ।
ओम् शक्ति, ओम् शक्ति ओम् ।

× × ×

---

[1] 'ओम् शक्ति' की टेक वाले ऐसे छह पद कवि ने क्रम से गणेश, शक्ति, स्कंद, सरस्वती, कृष्ण और लक्ष्मी की स्तुति मे रचे । यहाँ प्रथम और अंतिम स्तवन उद्धृत नही हुए ।

[2] स्कंद ।

आर्य-दर्शन

सपना देखा था!—वह कैसा सपना था!
स्वप्न नहीं वह, वरन् जागरण अपना था! (सपना)
× × ×
टीले पर देखा!—उस ऊँचे टीले पर
है विशाल बरगद का पेड़ खड़ा तन कर! (सपना)

वृक्ष के तले,—उस विशाल वट-वृक्ष तले
राजित थे चिद्रूप देव!—ज्यों दीप जले! (सपना...)

बुद्धदेव थे देव,—बुद्ध भगवान् स्वयम्!
देखा मैंने ज्ञान-दीप्त मुख, दिव्य परम! (सपना.)
× × ×
टीले पर देखा;—उस ऊँचे टीले पर
स्वर्णिम रथ था खड़ा—जुता घोड़ा सुन्दर! (सपना..)

रथ पर था सारथि!—रथ के उस सारथि का
रूप देखते ही मैं तो बे-मोल बिका! (सपना .)
× × ×
वह सारथि थे कृष्ण—कृष्ण भगवान् स्वयम्!
ज्ञान-पुंज साक्षात्, पुण्य-दर्शन अनुपम! (सपना. .)
× ×

सारथि जिसके कृष्ण,—कृष्ण जिसके रथवान,
देखा रथ मे चिताकुल वह रथी जवान। (सपना .)

× × ×

विक्रम था साक्षात्,—वीर-विक्रम था वह।
अरूढार्थ भी पार्थ नाम सार्थक था वह। (विक्रम)

× × ×

धन्य श्रवण है मेरे,—धन्य श्रवण मेरे।
उन वीरो की बाते सुनी इन्होने, रे। (सपना)

"जय की चाह न मुझको,[1]—जय की चाह नही।
मरूँ भले, पर इनके क्षय की चाह नही[2]। (धन्य)

"स्वजनो का वध करूँ?—स्वजन-घाती बनकर
किस प्रकार पाऊँगा मैं सुख-भोग-निकर?[3]" (धन्य)

कृपाविष्ट हो,—परम कृपा मे कातर मन[4]
वीर धनुर्धारी ने कहे अनेक वचन। (सपना)

सुने कृष्ण ने।—सुने कृष्ण ने पार्थ-वचन,—
सुनकर स्मय मे खिला कृष्ण का कमलानन। (सपना)

"आओ, चाप उठाओ। चाप उठाओ हे।
अधम शत्रु-दल को अब धूल चटाओ हे[5]। (आओ)

---

[1] 'न काक्षे विजयम्'। गीता १।३२।

[2] 'एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि'। गीता १।३५।

[3] 'स्वजन हि कथ हत्वा सुखिन स्याम?' गीता १।३७।

[4] 'कृपया परयाविष्ट'। गीता १।२८।

[5] 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय' (गीता २।३७) की छाया।

"छोटा मन मत करो,[1] न चिंता व्यर्थ करो[2]।
क्लीव-विलाप न करो[3]।-अहा, न अनर्थ करो। (आओ)

"सत्य नित्य है।—नित्य सत्य मिट सके नही।
स्थिर-निश्चल जो, वह वट या घट सके नही[4]। (आओ)

"उसमे दुख का, अश्रु-स्वेद का, प्रश्न नही।
जन्म-मरण का, हर्ष-खेद का, प्रश्न नही[5]। (आओ)

"शस्त्र-छेद क्या?—शस्त्र-छेद का प्रश्न नही।
अग्नि-दाह का, सलिल-क्लेद का प्रश्न नही[6]। (आओ)

"कर्म धर्म है धर्म कर्म।—वस किये चलो।
फलकी चाह अयुक्त।—न तुम फलपर मचलो[7]।" (आओ)

---

[1] 'क्षुद्र हृदयदौर्वल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ'। गीता २।३।

[2] 'न त्व शोचितुमर्हसि'। गीता २।२७—२।२८ और २।३० मे मे प्रत्येक श्लोक का अन्तिम चरण।

[3] 'क्लैव्य मा स्म गम' (गीता २।३) की छाया।

[4] 'नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन' (गीता २।२४) की छाया।

[5] 'मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदु खदा' (गीता २।१४) तथा 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' (गीता २।२०) की हलकी छाया।

[6] 'नैन छिदन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक, न चैन क्लेदयन्त्याप'। गीता २।२३।

[7] 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (गीता २।४७) की छाया।

चाँद

हे विरहि-जनो के संतापक की पदवी-वाले चाँद !
जो तुम्हे चाहते उनकी हृदय-सुधा के प्याले, चाँद !
हे विस्तृत नभ के सर मे विकसे पुंडरीक-से चाँद !
हे शीतल, चारु, धवल, दीपित छवि के प्रतीक-से चाँद !
जब सघन घनो के दल तुमसे टकराने आते, चाँद !
तुम झलमल मुक्ता-द्युति दे उनका मान बढाते, चाँद !
जो अपकारी को भी उपकारो से उभारते, चाँद,
वे है महान् यह तथ्य तुम नही क्या मकारते, चाँद ?

यज्ञ

यजन करे, हम महा-यजन करे !

× × ×

सकल-वध-मोचन का,
    सकल-लोक-लोचन का,
        लोचन के तारे-मा
            रक्षण करते जन का
                जो, उनका, दुख-वन का,
                    सकट के कानन का
                        उत्पाटन करने वाले भव-भय-भजन का

भजन करे, सग मिल भजन करे !
यजन करे, हम महा यजन करे !

रोग-व्याधि-मोचन का,
    शोचनानुशोचन का
        जाल भेदने वाले
            का, चिरायु-वर्द्धन का,
                अभय-सात्वना-घन का,
                    पौरुप-बल-वर्द्धन का,
                    सिद्धि-सफलता-दानी सत्य-तेज-मय-तन का

भजन करे, मग मिल भजन करे !
यजन करे, हम महा यजन करे !

× × ×

शुकी-गीत

उन श्रीचरणो का करे भजन,
हो सत्कर्मो मे लगी लगन,
मन हो प्रसन्नता-मगन, शुकी,—
जो हो सो हो, न तनिक शोचन !

विधि का विधान अव्यर्थाशिय
होती है सदा कर्म की जय !
जब समझ लिया यह भेद, शुकी,
तो कैसी चिंता, कैसा भय !

सुधियो से मिटते दुख के दिन,
उड जाता है नैराश्य-तुहिन,
जब समुदित होता प्रेम !— शुकी,
पर प्रेम कभी होता न मलिन !

धर ध्यान भानु[1] का निशिवासर,
निर्लिप्त बना मानित अतर,
'शत-शरत्' ज[illegible], मे जिये, शुकी,—
हम मर्त्यलोक मे बने अमर !

---

[1] भारती-काव्य · 'भानु' प्राय सर्वत्र 'ज्ञान' के प्रतीक हैं ।

पुण्यकृत्, महातेजस्वि-प्रवर
श्री-सुब्रह्मण्य को यदि सादर
हृप भक्ति निवेदित करे, शुकी,
तो दुख का लेश रहे क्यों कर ?

यीशु ख्रिस्तुस[1]

ईसा सलीब पर चढ़ा[2]। प्राण उसने त्यागे[3]।
वह, किंतु, तीन दिन बाद जी उठा फिर सदेह[4]।
यह चमत्कार मरियम मग्दलिना ने देखा,
जिसके अंतर में लहराता था अतल स्नेह।
तत्त्वार्थ कथा का सुनो, देशवासियो, सुनो
प्रभु नित्य हमारे अंतर में करके प्रवेश,
हमको उबारते हैं विघ्नों-बाधाओं से,
यदि हम रहने दें शेष अहंता का न लेश।

× × ×

---

[1] (तमिप येसु किरिस्तु।) 'ईसा मसीह' का यूनानी रूप। अर्थात् 'अभिषिक्त' ईसा [√ खृश्रो (=अभि+सिच्)+ निष्ठा में 'क्त' का स्थानापन्न विकार]। मूल इबरानी 'मशियह्' (√ 'मशह्'—कृत) का अनुवाद।

भावार्थ त्राता के रूप में परमात्मा द्वारा अभिषिक्त।

[2] दे० 'मत्ती की इंजील' २७।३५, 'मरकुस की इंजील' १५।२४, 'लूका की इंजील' २३।३३, 'यूहन्ना की इंजील' १६।१८।

[3] दे० 'मत्ती' २७।५०, 'मरकुस' १५।३६, 'लूका' २३।४६, 'यूहन्ना' १६।३०।

[4] दे० 'मत्ती' २८।१-१०, 'मरकुस' १६।४-११, 'लूका' २४।१०-११, 'यूहन्ना' २०।११-१८।

अपना सलीब हो सत्य, साधना कील जडे,
भावना मरण का वरण करे ईसा बनकर।
सशरीर पुनर्जीवन पायेगी वह उदार,
वह महाप्राण हो बनी रहेगी अजर-अमर।
मरियम मग्दलिना ने पाया इस ईसा को,
उसने अपनाया प्रभु ईसा का यही धर्म।
तुम भी अब देर न करो, इसे स्वीकार करो,
पर पहले समझो आत्माहुति का सूक्ष्म मर्म।

पलनी जिसकी साध रही है,
खो जाये वह !—भीति नही है।
भीति नही है, भीति नही है।
भीति नाम की कोई वस्तु नही है।

खरकटाक्ष कामिनी तुली है
तपोभग पर !—भीति नही है।
भीति नही है, भीति नही है।
भीति नाम की कोई वस्तु नही है।

स्वजन दे रहा यदि विप ही है,
पी लेने मे भीति नही है।
भीति नही है, भीति नही है।
भीति नाम की कोई वस्तु नही है।

मनुज-मास-मालिनी श्रनी है
जिसकी, तर्जी शूल वही है,-
भीति नही है, भीति नही है।
भीति नाम की कोई वस्तु नही है।

भले गाज सिर पर गिरती है
या कि टूटती नभस्थली है,
भीति नही है, भीति नही है।
भीति नाम की कोई वस्तु नही है।

गौरैया-से

स्वच्छन्द रहो, निर्बन्ध रहो,
गौरैया-से !
जो आठो ओर उडी फिरती,
निर्बाध हवाओ मे तिरती,
अवकाश कीर्ण सुषमा का मधु
छकती-सी फुदक विचरती, उस
गौरैया-से
स्वच्छन्द रहो, निर्बन्ध रहो !
जो जोडे के सँग चहक-चहक
रचती है नीड मनो-मोहक,
जो पुलक-पुलक चुग्गे दे-दे
पाला करती है शावक, उस
गौरैया-से
स्वच्छन्द रहो, निर्बन्ध रहो !
जो उद्धक है मैदानो की,
आँगन, खेतो-खलिहानो की,
रीती घडियो की कथक, और
वैतालिक सुविहानो की, उस
गौरैया-से
स्वच्छन्द रहो, निर्बन्ध रहो !

तुझसे सवता है जो हित',
कैसे मानूँ वही उचित, हे माये?
प्रभुता कुशो मे उपहार
सिंह करे कैसे स्वीकार हे माये?

'मै न वशवद, म न प्रजा'—
विशद वचन यह[१] भूल न जा, हे माये!
फिर मै क्यो होऊँ भयवश्य?—
चूर्ण करूँगा तुझे अवश्य, हे माये!

---

१ अप्पर् का। भूमिका म 'पडार-गीत' प्रसग द्रष्टव्य।

तुझमे सधता है जो हित',
कैसे मानूं वही उचित, हे माये ?
प्रभुता कुत्ते से उपहार
सिंह करे कैसे स्वीकार हे माये ?

'मैं न वशवद, मैं न प्रजा'—
विशद वचन यह[1] भूल न जा, हे माये !
फिर मैं क्यो होऊँ भयवश्य ?—
चूर्ण करूँगा तुझे अवश्य, हे माये !

---

[1] अप्पर् का । भूमिका मे 'पडार-गीत' प्रसग द्रष्टव्य ।

परशिवम्

गुणातीत जो एक तत्त्व है,
सगुण उसीका अनेकत्व है।

'वह सर्वंग, सर्वज्ञ, सर्व-क्षम'
कहते सब मत, सब निगमागम।

× × ×

वह द्रष्टा, वह दृष्टि, दृश्य वह,
अकथ, अतर्क्य-प्रभाव, अविग्रह।

× × ×

लाभ तारता है त्रिताप-नद,
देता ऋद्धि तथा श्रेयस-पद।

× × ×

यदि सर्वंग-सर्वज्ञ तत्त्व वह
लगे कि उत्सेकोत्सुक रह-रह

है अतर मे, तो न चाहिए
जटाजूट या वसन गेरुए।

जब तक यह अनुभव सचेष्ट है,
यही परम गति को यथेष्ट है।

फिर तो वृथा स्तवन, निगमागम,—
केवल चित्तनिवेश ही अलम्।

वृथा साधना या तप-साधन,—
अलम् एक 'परशिवम्' का मनन।

मैं

मैं खग,—गगनविहारी ।
मैं मृग भूतलचारी ।
मैं कानन-छायातरु ।
मैं जल, जलधि, पवन, मरु ।

मैं तारागण भास्वर ।
मैं नभ का दिक्परिसर ।
मैं रज का कृमिकीटक ।
मैं जल-जीव असंख्यक ।

मैं कविता कवन्[1] की ।
कृति मैं तूलि-निपुण की ।
राजसौध, पुर, गोपुर
निर्मिति मैं विस्मयकर ।

× × ×

मैं माया-'मैं'-स्वामी ।
मैं चिद्-रुचि-नभ-गामी ।
निखिलान्तर के तम में
प्रज्ञाशिखा प्रथम मैं ।

---

१ तमिप् रामायण के कवि ।

अम्माक्कणु-पाट्टु[1]

"ताला खुलता कर से।
वैसे ही निर्मल मन खुलता बुद्धियोग के वर से।"
गाना खुलता राग से।
वैसे ही सुख का घर खुलता नारी के अनुराग से।

---

१ कुमाऊनी 'जोड़े'-जैसा तमिप् लोकगीत।

गाड़ीवान-गीत[1]

"जगल की डगर है, भैया हो!
डाकुओ का डर है, भैया हो!"
"कुलदेवी का वल है, भाई!
वह माँ अतुलितवल है भाई!"

"डाकू लग आये, भैया हो,
गाडी रुकवाये तो क्या हो?"
"उस माँ का नाम अलम्, भाई!
सहमेगा काल स्वयम्, भाई!"

---

१ 'वटिक्कारन्-पाट्टु' (तमिष लोकगीत विशेष)।

वैरी के प्रति करुण

वैरी के प्रति करुण बना रह, रे मन,
वैरी के प्रति करुण।

आग धुएँ से घिरी रहा करती है,
त्याग न देती स्वगुण कभी वह, रे मन,
त्याग न देती स्वगुण।
वही प्रेम-परमेश विराजा करते,
जहाँ वैर निष्करुण सुदुस्सह, रे मन,
जहाँ वैर निष्करुण।
वैरी के प्रति करुण बना रह, रे मन,—

शुक्तिजात ही होती निर्मल मुक्ता,
ज्ञात नही क्या विगुण बात यह, रे मन?
ज्ञात नही क्या विगुण—
नही पक से ही क्या उद्गत होते
पकज सुन्दर अरुण पुष्पवह, रे मन?
पकज सुन्दर अरुण—
वैरी के प्रति करुण बना रह, रे मन,—

हृष्ट चित्त भी हृष्ट नही रह पाता,
छल होता मर्मघुण, भाव-ग्रह, रे मन,

छल तो है मर्मघुण !
मधु की मधुता वनी नही रह सकती
यदि पुट दे-दे निपुण विषावह, रे मन !
यदि पुट दे-दे निपुण—
वैरी के प्रति करुण वना रह, रे मन,—

× × ×

वाघ भले ही तुझे मारने आये,
उसे वना ले स्वजन प्रेम से, रे मन,
उसे वना ले स्वजन !
पराशक्ति माँ का स्वरूप है वह भी,
कर निवद्धकर नमन प्रेम से, रे मन,
कर निवद्धकर नमन !
वैरी के प्रति करुण वना रह, रे मन,

मुन्ना-गीत[1]

खेलो-कूदो नन्हे मुन्नो, जी भर।
आलस का तो नाम कभी मत लो, मुन्नो!
मिलजुल खेलो, रहो सदा हिलमिलकर!
भूल किसी को गाली कभी न दो, मुन्नो!

नन्ही चिड़िया की जैसी फुरती से
उड़े फिरो, फुदको, चहको, किलको, मुन्नो!
पछी की सुंदरता देख खुशी से
और अचंभे से भर लो दिल को, मुन्नो!

चुगती फिरती मुरगी को संग लेकर
खेलो, संग-संग डोलो इधर-उधर, मुन्नो!
कौआ पक्का चोर हुआ करता, पर
तुम्हे दया ही करनी है उस पर, मुन्नो!

दूध पिलाती, अपने को दुहवाकर,
गाय बड़ी अच्छी प्यार करो, मुन्नो!

---

१ 'पाप्पाप्पाट्टु' (नामक ।ति-उपदेश-परक बालगीत)।

आगे-पीछे पूँछ हिलाता कूकर
मानव का सगी है, प्यार करो, मुन्नो।

बैल तुम्हारा चलवाता हल-बक्खर,
गाडी का घोडा खटता अनथक, मुन्नो,
बकरी का भी बडा भरोसा तुम पर,
इन्हे प्यार से पालो, ये सेवक, मुन्नो।

बडे भोर उठ पढना-लिखना कर लो,
मधुर कठ से मधुर गीत गा लो, मुन्नो,
साँझ पहर खेलो या घूमो-टहलो;
नियम बना लो यही, नियम पालो, मुन्नो।

चाहे कुछ हो जाय, झूठ मत बोलो,
पर चुगली भी खाओ कभी नही, मुन्नो।
दैव सहायक, चिंता मन से धो लो,
अहित न होगा, हित की हानि न हो, मुन्नो।

जो पड जाये तुम्हे बुरो से पाला,
करो सामना उनका, तुम न डरो, मुन्नो,
उन्हे कुचल कर वरण करो जयमाला,
बुरा नही जो उनसे घृणा करो, मुन्नो।

हिम्मत कभी न हारो विपद् पडे पर,
हो न निराश, घडी हो भले विकट, मुन्नो,
है अत्यन्त दयालु पिता-परमेश्वर,
दूर करेगा वह सारे सकट, मुन्नो।

आलस बुरी बला है, आलस अनुचित।
माँ की बात न टालो मरने तक, मुन्नो।
रोते शिशु, असहाय पगुजन के हित
रन मे कूद पडो, जूझो भरसक, मुन्नो।

तमिप-नाडु को अपनी माता मानो,
इस माता का किया करो वदन, मुन्नो,
मधुर सुधाधिक देश, स्वाद पहचानो,
पुरखो की माटी उर का चदन, मुन्नो।

भापोत्तम भापा है तमिप, सुधावत्,
इसको सीखो शुचि श्रद्धा के वश, मुन्नो।
ऋद्धि-सिद्धियो से समृद्ध यह भारत,
गाओ नित अपने भारत का यश, मुन्नो।

उत्तर की सीमा पर हिमगिरिवर है
और कुमारी दक्षिण सीमा पर, मुन्नो,
पूरब-पच्छिम मे अपार सागर है,
भारत-भू की भू-सीमा है वर, मुन्नो।

है वेदो का देश हमारा भारत।
वीरो की जननी भारत माता, मुन्नो।
एक अभिन्न-हृदय है प्यारा भारत।
इष्टदेव भारत है वरदाता, मुन्नो।

जात-पाँत या ऊँच-नीच दुनिया मे
कभी न मानो,—पाप यही झगडे, मुन्नो।

जो आचार-विचार-बुद्धि-विद्या मे
और प्रेम मे ऊँचे, वही बड़े, मुन्नो!

प्राणिमात्र से प्रेम तुम्हारा व्रत हो,
परमदेव को एक सत्य मानो, मुन्नो;
हृदय वज्र-सा दृढ, सकल्प-निरत हो,
सच्चा जीवन-मत्र इसे जानो, मुन्नो!

दुंदुभी

बजो, गडगडाओ, गरजो, दुंदुभी।
जय गूँजे दिग्विदिक्, बजो दुंदुभी।
जय गूँजे वेदों की, जय उस नित्य शक्ति की,
भाल-विलोचन के सँग नित-नर्त्तन-रत जो, दुंदुभी।
—बजो दुंदुभी।

यथा-बोध जग-हित की कहने का अभिलाषी
मैं इस शुभारंभ में दैव-कृपा-प्रत्याशी।

× × ×

नारी को भी दी है जग के त्राता ने मति,
जड़ पुरुषों ने की सुमतिमती की निर्मति-गति।

एक आँख को फोड़ बनोगे अक्षिमान् क्या?
नारि अज्ञ हो तो जग होगा प्रगत ज्ञान क्या?

सचराचरगत एकतत्त्व ही परमतत्त्व है।—
उसे अनेक बताकर लड़ना मूर्खत्व है।

वही अग्नि है, काबे की भी दिशा वही है,
गिरजा और सलीब वही, वह सब-कुछ ही है।

सर्व-वद्य सर्वथा-वद्य है वह, सर्वग है।
बहुधा-कल्पित एक।—वृथा लड़ता यह जग है।

मेरे घर की बिल्ली जो है, सितरोमा है,
विविध भिन्नवर्णी नन्हे छौनो की माँ है।

छौना एक घुमेल, एक काजल-काला है,
एक दूधिया, एक साँप-से रँगवाला है।

रग अलग है, किंतु 'जाति' सबकी है एक।—
रगाधृत अवरावर-भेद निपट अविवेक।

रगभेदगत मानवभेद निरा अज्ञान,—
क्रिया-कर्म-चिंतन तो सबके एक-समान।

हैं सब जग-वासी समान।—दुदुभी बजो।
तोडो मिथ्या जाति-मान, दुदुभी बजो।

अन्न मिले भरपूर जिजीविषु जन-जन को।
श्रमफल-तृप्त रहे सब, हरें न परधन को।

अबल अनुज पर अग्रज क्यों बलयोग करे?
नर धनार्थ या भय से दास बने?—धिक् रे।

समता हो समता, गरजो दुदुभी।
बढे प्रेम का राज, बजो दुदुभी।

निखिल जगत् के मानवकुल का शुभ ही शुभ हो।
मगल, हो मगल ही मगल हो, गरजो दुदुभी।
—बजो दुदुभी।

अर्वाचीन नारी

'नारी की अनिवार्य अपेक्षा है स्वतन्त्रता'—
निकली वदनकमल से यह स्वरसुरभि तुम्हारे !
अथवा था नारद की वीणा का निनाद वह ?
या मोहन की मुरली की वह मधुर टेर थी ?
या श्रुतियाँ ही रूपकुमारी-रूप धारकर
उन्नति पथ पर हमे अग्रसर करने आयी ?
अथवा आवागमन-निवारक अमृत स्वय था ?
नारि, तुम्हारी जय हो, युग-युग जय हो, जय हो !

× × ×

"सम-सुयोग नरनारी को यदि सदा सुलभ हो,
तो ससृति के चिद्विलास का चिरविकास हो।
शीलवती, गुणवती, सौम्य नारी, सुलक्षणा,
स्वय व्यक्त शिवशक्ति जगन्माता-स्वरूप है।
श्वानो के 'गुण' होगे भय-सकोच आदि 'गुण',
किंतु कुलीना के विशिष्ट गुण शिष्टि, भव्यता,
स्वतन्त्रताप्रियता, मतिमत्ता, शील आदि है।"
नारिरूप देवी ! देवी की बाते सुनिये !

× × ×

"गरिमामडित गति हो, लक्ष्यनिबद्ध दृष्टि हो ;
निश्चय से निश्शक और निर्भीक आचरण,
ज्ञान-समर्थित स्वाभिमान तो हो यथेष्ट, पर
चचलता को पास न आने दे सुशीलता।
नारी ऐसी हो ! यह नही कि नीरस जीवन
घोर अज्ञता-तम-निमग्न रह, कलाहीन रह
यापित करे !—तिरस्कृतव्य वह 'नारिधर्म' से !"
नवविहान की कन्या का वक्तव्य श्रव्य है !

"ब्योरे और मरम इहजीवन के हृदयगम
करके, सत्साहित्य-अध्ययन करके सम्यक्,
देश-विदेशाटन से अभिनव अनुभव सचित
करके उनसे बहुविध बहुश्रुतता साधित कर,
भारत के उन्नतिसाधन मे यथाशक्ति श्रम
किया करेगी ससिंदूर-सीमतिनियाँ हम।
गृहकोटर मे बद समाजविमुख रहने की
परपरा को तोडेगी हम वीर-रमणियाँ।

"हम आयत्त करेगी विविध कला-विद्याएँ।
हम रच देगी विविध यत्र-साधन-सुविधाएँ।
गतावधिक युगबाधित मिथ्या भाव मिटाकर
भग्न करेगी हम विमूढता के बधन सब।
कर मानवकर्त्तव्य कर्म सम्यक्-सपादित
उन्हे करेगी हम आराध्यदेव को अर्पित।
आदृत-पूजित हम पुरुषो की सदा रहेगी।"
उदयकन्यका के कैसे ऊँचे विचार हैं !

नारीमुक्ति की 'कुम्मि'[1]

कुम्मि मने, तमिप-नाडु भूप उठे, कुम्मि मने।
रूढि-भूत भगा, वधू मुक्त हुई, मगल है। कुम्मि मने।
कुम्मि मने

पुस्तक को छूना भी नारी का पाप माननेवाले अब न रहे।
'घर मे ही बद रहे नारी,' अब हारे यह कहने वाले जन, हे।
कुम्मि मने

जैसे गोशाला मे बाँधी जाती बेबस गाये डडे के बल,
वैसे ही नारी को घर मे घेरे रखने की टूटी रूढि प्रबल।
कुम्मि मने

सदाचरण की बाते अब होगी तो नर-नारी दोनो की होगी।
मेटेगी हम परपरा वह जिससे लडकी को बलात् व्याहा करते ढोगी।
कुम्मि मने

नारी भी ले सकती है उपाधियाँ, रच सकती वह भी सविधान।
पुरुषो से अतर नही होता है किसी भाँति नारी का सहज-ज्ञान।
कुम्मि मने

प्रिय के कर थाम साथ देगी हम पग-पग पर होकर सहकर्म-निरत।
'वधू-धर्म' होगा हमको पाकर पहले से कही भव्यतर, उन्नत।
कुम्मि मने

---

[1] तालियाँ बजाती वृत्ताकार कक्षा मे परिक्रमण करती स्त्रियो के समूह का (तथाविशिष्ट स्त्री-) नृत्य और/या उस नृत्य के साथ गाया जानेवाला गीत।

करो गीति-प्रणयन, स्वर-गायन
और भरतनाट्यम् का नर्त्तन।
सकल भौत तथ्यो का सचय
करो कि मिले सत्य का परिचय।
सकल देश मे धर्म वढाकर
वाँटो सुख, आनद, इष्ट वर।
परमदेव-से प्रकट असधित,
रहो सदा-विलसित, चिर-वदित।

चाँदनी, तारे, पवन

चाँदनी-तारो-पवन के घोल से जो सुधा छनती, उसे पी झूमते,
उडा मनमानी दिशा मे मन-विहग रूप-माते हम अवारित घूमते।
जिस शकट मे हो कटे कटहल लदे, महमहाते हो मधुर कोये पके,
है अचभा क्या भला, उस शकट पर गीत गाते और हो यदि भोर के?

× × ×

भरे भुवन के भाँति-भाँति स्वर ले आया है पवन गगनचर,
गाते हम भी हर्षभरित-मन उन्ही स्वरो को गीत-ग्रथित कर,
किंतु निकट की घटाध्वनि पर अथवा कुक्कुर के बुक्कन पर
मन टिक भी न सका कि सुना 'भाई भूखा हूँ, भीख' दीन-स्वर।

तभी किवाड लगे तड-से, पूरब-से उठा शखरव तत्क्षण;
मिला स्त्रियो के सभाषण मे गोदो के बच्चो का रोदन।
पवन न जाने क्या-क्या लाता! कितना अर्थ पकड पाये मन?
चल मन शशिमडल पर जहाँ कि सभव रस-मधु का आस्वादन!

सतिरमति[1]

नन्ही-सी बिटिया, मेरी आँखो को पुतली, सतिरमति !
प्रेम-माधुरी-मधु तू मेरी नयन-चाँदनी-मधु है री !
कहते हैं, विषधर के फण पर प्रकट नागमणि होता है ,—
मेरे भी अनुदार मनस् मे ज्योति बढ रही है तेरी !

× × ×

नीलसिंधु मे लहराते है लबे केश प्रकट तेरे,
चारुचद्र मे तेरा ही मुखचद्र दृष्टिगोचर है री !
निखिल विश्व मे तेरी ही प्रज्ञा की आभा छाई है ,
और प्रकाशित कालचक्र मे प्रेम-भावना है तेरी !

—नन्ही-सी बिटिया '

---

१ 'चद्रमती ।

सतिरमति[1]

नन्ही-सी बिटिया, मेरी आँखो की पुतली, सतिरमति !
प्रेम-माधुरी-मधु तू मेरी नयन-चाँदनी-मधु है री !
कहते हैं, विषधर के फण पर प्रकट नागमणि होता है,—
मेरे भी अनुदार मनस् मे ज्योति बढ रही है तेरी !

× × ×

नीलसिंधु मे लहराते हैं लबे केश प्रकट तेरे,
चारुचद्र मे तेरा ही मुखचद्र दृष्टिगोचर है री !
निखिल विश्व मे तेरी ही प्रज्ञा की आभा छाई है,
और प्रकाशित कालचक्र मे प्रेम-भावना है तेरी !
—नन्ही-सी बिटिया"

---

१ 'चद्रमती ।

अभेदानंद[1]

" 'सत्यतत्त्व है एक !—उसीका रूप चराचर !'
इस अनुभव को भुला यदि जग के नारी-नर,
'मेरे देव, तुम्हारे देव' अभेद-भेद कर
इसी नाम पर बन लेते है शत्रु परस्पर,

तो यह उनकी क्षुद्रहृदयता है" सन्मति यह
देने वाले परमहितैषी गुरुवर है वह,—
ज्ञान-खेत को चर जाने वाले पचेंद्रिय-
पशुओ को वश करने वाले वीर सत्यप्रिय !

---

[1] स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई। १९०३ ई० मे उनके मद्रास पधारने पर कवि ने 'स्वामी अभेदानन्द पर सवर्द्धनात्मक कविताएँ' लिखी थी।

महामहोपाध्याय[1]

न है तो न हो धन!—न हो खेद मन मे
कि सुख-भोग से तुम अपरिचित भुवन मे!
जिओ, चिर जिओ!—नित्य-नव यश उदय हो!
कुडदैनगर[2] के सुधीवर्य, जय हो!

बनी है तमिप-वाक् 'वैदूर्यगिरि'[3]-जात,
तब तक सुकविकठ से सस्तवन, तात,
होता रहेगा तुम्हारा हृदय से!
जिओ, चिर जिओ, यश बढे प्रेमजय से!

---

[1] (मद्रास विश्वविद्यालय की इस मानार्थ उपाधि से सम्मानित) 'तमिप पितामह' उ० वे० स्वामिनाथ अय्यर्।

[2] कुम्भकोणम्, जहाँ श्री अय्यर् तमिप के प्राध्यापक थे।

[3] 'पोदिय-मलै' जहाँ तमिप पाणिनि 'अगत्तिय' (अगस्त्य) भगवान् का आश्रम है।

विश्रुत देश फ्रांस के पंडित
तथा आंग्ल-कविगण यश-मंडित
मेरा तमिप-कवित्व अनूदित
करके गाते हैं प्रशस्ति नित :
'नव्य माधुरी, नव रूपाशय,
नव पद, नव भावना-समुच्चय'
वही अमर कविता प्रस्तुत है,
वॅङ्कटेशुरॅट्टप्प भूपते।

× × ×

ऐसे मे कैसे लग सकता था मेरा उर ?
फिर भी शिक्षार्जन को पहुँचा मैं नॅल्लैयुर ।

वह विद्या कि गणित मे बारह वर्ष लगाओ,
फिर भी नभ का एक सितारा चीन्ह न पाओ !
वह विद्या कि सहस्रो उत्तम काव्य बाँचकर
कोरे रहो, न जानो काव्यनिहित कवि-अतर ।
अर्थशास्त्र के नाम जपो 'धन, उद्यम, धधे',
रहो देश के अर्थनाश के आगे अधे !
बडे-बडे ग्रथो के केवल नाम गिनाओ,
किंतु भला क्यो उनसे कोई लाभ उठाओ ? ।

कवन् नामक एक व्यक्ति हो गया कभी है,
कोई कालिदास था, जिसने कविता की है,
नभ-मडल के ग्रह-तारो का अद्भुत परिचय
साधा था भास्कराचार्य ने कर गणितोदय,
पाणिनि भी था कोई वैयाकरण,—जगत् मे
जिसकी रचना अतुलनीय है पडित-मत मे,
हुआ एक शकराचार्य, मानव-जीवन का
ध्येय बताया जिसने,—सत्यतत्त्व त्रिभुवन का,

चेरनृपानुज[1] ने था रचा 'शिलप्पदिकारम्',
देव वल्लुवर्[2] का 'तिरुक्कुरल्' जग मे अनुपम,
हुए पाड्य के और चोष के भूप रसिकवर
भूमिदान मे तथा धर्म-रक्षण मे तत्पर,

---

[1] चेर-नरेश चॅड़्गुट्टुवन् के अनुज इलगो ।

[2] 'तमिष्-वेद' 'तिरुक्कुरल्' के रचयित तिरुवल्लुवर् ।

कर करुणा की ज्योतिर्मय असि कर मे धारण,
था अशोक ने किया धरा का धर्म प्रशासन ,
वीराशसित वीर शिवाजी हुए यशोधन ,
विजयवरण कर मेट दिया था म्लेच्छ-कुशासन ,

कभी न पाते इन जैसी बातो का परिचय
वे जन, जिनके मता अँगरेजी विद्यालय ।
नही जान सकते स्वदेश का वे कदापि मन ,
न ही सनातन गौरव या दुर्गति अधुनातन ।
भावी देशदशानुमान मे भी अक्षम वे
भ्रम-भूले जन । जिसमे नही किसी से कम वे,
वह गुण केवल एक दासजीवन-अनुशासन !
क्या बतलाऊँ ? खौल-खौल-सा उठता है मन !

× × ×

अँगरेजी शिक्षा क्या थी, उसने तो केवल
लाटसाहबी कला मुझे सिखलाई थी छल !
उसके कपटाचार्यो से बस यही निवेदन
"पाठ तुम्हारा मात्र समय का अपचय-साधन !
केवल श्रान हुआ मे तन-मन से, जीवन से ,
नयन गये कोटर मे, तेजस् गया नयन से !
गत स्वतत्रता-चितन !—शकाएँ उमटी हैं !
बुद्धि हवा के तिनके-सी बहकी फिरती है !

व्यर्थ पडा भारी व्यय-भार पिता के सिर पर !
घर कर लिया कई दोषो ने मेरे भीतर !
सब पाया है एक नही हित, सच कहता हूँ !
मदिर-मदिर यही बात दुहरा सकता हूँ !

वह तो कहो कि शेप अभी थे पुण्य पूर्वकृत,
और कृपा भारतमाता की हुई अपावृत
पडकर भी उस घोर अज्ञतागर्त्त-तिमिर मे
विधिवल से जैसे-तैसे उबरा हूँ फिर मैं।

× × ×

पिता की निर्धनता

बडा क्रूर सकट आ पडा पिता के सिर पर
निर्धनता का दुख झेलना पडा भयकर,
क्षुद्रमना लोगो के पड्यन्त्रो मे पडकर
विपुल सम्पदा उनकी तुरत हुई छूमतर।
ठकुरसुहाती करते जो डोला करते थे,
वही 'निकट के मित्र' छाँह छूते डरते थे।
उपकारो पर पले लोग भी कभी न आदर
करते है सौभाग्य-अस्तमन हो जाने पर।

× × ×

अर्थ-महिमा

धनकी महिमा अमित।—जगत् का प्रेरक धन है।
मिथ्या नही, अयुक्त नही यह सुधी-वचन है
वित्तहीन को नही जगत् मे कही शरण है।
वित्तहीन का सगी जीवन-रूप मरण है।
वित्तहीन पर प्रवल विपद्-वन्या का धर्षण।
वित्तहीन का प्रथम धर्म है धन का अर्जन।
पर लक्ष्मी को दोप नही मैं देता, कारण,
धिक् है धन पर मरने वाले अज्ञानी जन।

× × ×

पिता सिधारे। निर्धनता को मिला अधिक बल।
धरा-धाम मे शेष न कोई शरण, न सबल!
कुछ न सूझता था। विचार धुँधले थे मन मे
दृढता का था लेश नही। थी शक्ति न तन मे।
क्षुद्रमना लोगो पर था लुट-लुटा चुका धन।
तथाकथित शिक्षा से लाभ न हुआ एक कण।
क्या उपाय था?—निर्गति कोई भी न क्लेश मे!
जन्म भला क्यो मिला मुझे हतभाग्य देश मे?

कण्णन्[1] : मेरा मित्र

मैं वन-वन मे फिरता, वह मेरे मन मे ,
भय की छाया को छूने न लगने देता ।
मैं रन-रन मे धँस पडता विकट चमू ले ,
वह सारथि बनकर मुझे बनाता जेता ।
मैं जब-जब दुखदायक रोगो मे पडता ,
वह उचित औषधो का उपचार बताता ।
मैं लघु-लघु चिंताओ से घबराता तो
वह आश्वासन दे-देकर जी बहलाता ।
मैं जो-जो मांगा करता, वह ला देता ,
हँस-हँसकर मेरी छेड-छाड सह लेता ।
मैं अनमन होता तो वह नाच दिखाकर
या गीत सुनाकर मन-रजन कर देता ।
मैं मन मन जिन भावो मे रमता, उनको
कहने से पहले भाँप लिया करता वह ।
कण्णन्-सा कौन हितैषी स्नेही होगा ?
स्नेही-मडल मे आप तुलित अपना वह !
वह खिल-खिलकर हंसता, प्रमुदित होता है ,
नन्हे बालक-सा खेल-कूद मे रमता ।

---

[1] कृष्ण (का तमिप तद्भव) ।

वह् दिल-दिल मे धँसता, मोहिनियो को भी
मोहा करता !—क्या माया-रचना-क्षमता !
वह हिलमिल रहता, पर यदि बात न मानूँ
तो नाच नचाकर थका मारता नव-नव।
कण्णन् को खोकर जग मे क्या रस होगा ?
जीवन-धारण भी हाय, न होगा सभव।
मै अनबन मानूँ, रूठूँ, कोप करूं तो
यो-ही-कुछ कहकर लोट-पोट कर देता।
मै मान ठानता तो यो-ही-कुछ करके
हर लेता मन का भार, मोद भर देता।
सकट कटता उसके समीप रहने से,
विपदापद् का हो जाता आप निवारण।
ज्यो जल-जल मरते है पतग दीपक पर,
मुझ पर घिरकर मिट जाते दु ख-दुरित-गण।
मादक अकपट-मधु प्रेम-गीत-गायन मे,
नयनाभिराम चित्रावलि के विरचन मे,
रिपुदल-दलनक्षम समरकला मे, सबमे
पारगत पडित के गुण है कण्णन् मे !
कण्णन् वेदो का वेद, महामुनियो का
सवेद्य परमतत्त्वार्थ-तत्व है कण्णन्।
कण्णन् अनुपम गीता से देता सुख-शम्,
गाऊँ मैं उसकी कीर्त्ति, करूँ सवर्द्धन !

कण्णन् : मेरी मैया

× × ×

मेरी मैया, जिसका 'कण्णन्' है नाम ख्यात ,
मुझको विराट् अवकाश-भुजाओ मे भरती ।
गोदी मे ले, कह विविध लुभानी कथा मुदित
होती । गोदी मेरी मैया की है धरती ।

× × ×

वह अति विचित्र बहुरूप दिखाती दृश्य मुझे ,
वह विविध खिलौने देकर मुझको बहलाती ।
है एक खिलौना चॉद, सुधा की धारा-सी ,
जिसकी कमनीय मनोहर शोभा बरसाती ।
दल के दल चलते रगविरगे बादल भी
है चॉद खिलौने से न मनोहरता मे कम ।
है एक खिलौना सूरज, जिसके मुखमडल
की दिव्य दीप्ति के वर्णन मे वाणी अक्षम ।

× × ×

दिक्-दिक् मे, देश-देश मे कल-कल कर बहती
सुदर-सुदर नदियाँ भी क्रीड़निकाएं है ।

वह-वहकर मिलती महाक्रीडनक महोदार
महनीय महोदधि मे उनकी धाराएँ है।
वह पारावार अपार, उच्छलित-फेनिलोर्मि,
गर्जन मे कोई गीत मद्र-स्वर गाता है।
गु जित मेरी कण्णन् मैया का 'ओ३म्' नाम
उसके गर्जित सगीत-स्वरो मे आता है।

ये वन, उपवन, आक्रीड! क्रीडनक ये भी है!
इनके वहुरग सुमन कितने मनमोहक हैं?
कितने कोमल है? कितने मसृण-मसृण तृणदल?
फलतरु कितने रुचिकर-रसमय-फल-दायक है?
मेरी कण्णन्-मैया ने मेरी वाल-केलि
के लिए क्रीडनक नानारूप वनाये है!
ये कोटि-कोटि क्रीडनक रुचिजनक रुचिर रीति
से उसने अखिल निखिल मे सुभग सजाये है।

× × ×

वरदान माँगने के भी पहले ही मैया
कर चुकती है मुझको मनचीता वर प्रदान।
ममता दिखलाती है, सरक्षण करती है,
रखती है मुझे वना अरुस्सुनन्[१] के समान।
अपनी इस महिमामयी ममत्वमयी माँ का
मैं करूँ सदा सर्वत्र पुण्यमय कीर्तिगान!
कण्णन्-मैया के कृपा-लाभ से मुझे मिले
चिर आयु, यशस्वी जीवन और अनन्य मान।

---

[१] अर्जुन (का तमिप तद्भव)।

कण्णन् : मेरा बापू

जिसे यहाँ पहचान के लिए 'कण्णन्' नाम मिला है,
उस अनाम के नामोच्चारण मे अक्षम रसना है।
तीन[1] नाम दे उसे अज्ञ यादवी मचाते रहते।
उसका भेद न जान देवकुल का उसको सब कहते।

दीनो से बधुता उसे, श्रीमतो से चिढ भारी।
वह पातनी विपद् मे अविचलचित् का श्री सुख-कारी।
उसका भाव बदलता अनुदिन, अनुक्षण-नव उसका मन।
बैठ निराले गीत-कथादिक मे कटते उसके क्षण।

---

[1] (तमिष मुहावरे के अनुसार) एक के ही अनेक परस्पर-भिन्न ।

कण्णान् : मेरा सेवक

वहुत माँगते, जो दो, लेकर साफ भूल जाते है।
जिस दिन काम अधिक हो, दर्शन तक को तरसाते है।
पूछो 'क्यो, क्या हुआ?'—कहेगे. 'मटके के विच्छू ने
दाँतो से काटा, मालिक!' या 'घरनी को जूजू ने
पकड लिया, मालिक!' अथवा 'कल तो मेरी दादी की
वारहवी थी, मालिक!' या चट-गढी चटपटी-फीकी
वात वना देगे। सच का तो नाम नही लेते है।
कहते कुछ, करते कुछ उलटा। चरका ही देते है।
सगो-परायो से घर की सब ढँकी-तुपी कहते है।
गप की लत ऐसी, भेदो को पख लगे रहते है।
उथले ऐसे, तिल भी जो कम पड जाता है घर मे,
इनके पानी पचता जब डौडी पिट जाय नगर मे।
नौकर के मारे नाको दम रहता सारा घर था।
पर नौकर के विना काम चलना भी तो दूभर था।
तभी कही से आया। वोला, " 'इटै'[1] जाति का हूँ जी।
घर के सारे काम जानता हूँ, यह मेरो पूँजी।
ढोर चरा सकता हूँ। वच्चो को सँभाल सकता हूँ।
घर की भाड-पोछ कर सकता। दिये वाल सकता हूँ।
जो कहियेगा, कर दूँगा। कपडे-लत्ते सेतूँगा।

---

[1] ग्वाला ('इटैस्माति,' 'माट्टिटैयन्')।

गीत सुनाकर, हँसा-खिलाकर, बच्चों को चेतूँगा।
जगल की हो डगर, चोर-डाकू लगने का डर हो,
दिन हो या हो रात, कही भी कैसा-भी अवसर हो,
सग रहूँगा, किसी कष्ट को कष्ट नही मानूँगा,
सुविधाओं मे कमी, वदन पर आँच न आने दूँगा।
वन का मानुष हूँ! क्या सीखा, क्या गुन हाथ किये है?
कुश्ती के कुछ दाँव लठैती के कुछ हाथ लिये है!
सीधा हूँ, ऐया[१]! धोखा देना तो कभी न जाना!"
मैंने पूछा 'नाम तुम्हारा क्या है भला? वताना!'
बोला "नाम कहाँ है कोई? यो कहते 'कण्णन्' हैं।"
सुघड देह। आँखो मे शील। विनय-मधु-सने वचन है।
मुदित हुआ मन। लगा यही सब भाँति योग्य सेवक है!
कहा 'बडी बाते रहने दो। वेतन कितने तक है?'
बोला 'ऐया, मेरे आगे नाथ, न पीछे पगहे!
केस अनपके सही, आयु के सन अनगिन लगभग है।
मिले आसरा और प्रीत, तो दास और क्या चाहे?
छोह-नेह का मोल किसी रोकड से लाखगुना है!'
मुझे लगा यह तो कोई अगलो-जैसा बौडम है!
फिर भी मन ढलका कि ढग का नौकर मिलता कम है।
उसे ललक के साथ रख लिया, तद्यपि सुचित न था मन।
पर यह क्या? हममे अनुदिन-अधिकाधिक रत है कण्णन्!
कैसे बतलाऊँ, कैसे-कैसे सुख है कण्णन् से?
ज्यो नयनो के कवच पपोटे बनते नेह-जतन से,
त्यो ही सरक्षण करता कण्णन् कुटुम्ब-परिजन का।
बटबड कभी न सुनी, न देखा अनवधान कण्णन् का।

---

[१] (< आर्य) हुजूर।

झाड-पोंछकर चमकाये रखता वह घर-आँगन है।
भूल महरियो की सुधार देता गुपचुप कण्णन् है।
वही वैद्य, गुरु, धाय, परम-स्नेही सगी बच्चो का।
घरके किस-किस काम मे न उसने अपने को झोका ?
किसी बात की कमी न होने देता कभी किसी को।
सब-कुछ आप जुटा लाता है, देता आप सभी को।
सब-कुछ करता, भले मोल लाना हो दूध कि तक्कर!
माँ की ममता से करता है महिलाओ का आदर।
अपना तो बस वही मित्र, सद्गुरु, प्रभु, सचिव गुणाकर ,—
यह तो बस सयोग कि बन आया है घर का चाकर!
जिसने यही कहा था आकर 'इटै जातिका हूँ, जी',
लायी उसे कौन सी मेरी पूर्व-पुण्य की पूँजी!
हुआ पदार्पण था जिस दिन मेरे घर मे कण्णन् का,
उस दिन से कण्णन् को अर्पण चिंता-धन इस मन का।
और तभी से विकसमान है मेरा धन, यश, वैभव,
मेरा मान तथा प्रभाव क्रम से उन्नत है नित-नव।
वर्द्धमान है ज्ञान, योग, शिवबोध, काव्य, विद्या वर,
एव तेज प्रद विभूतियाँ भी बढ रही निरन्तर।
कण्णन् को पा गया, चीन्ह-पहचान गया कण्णन् को।
इसीलिए अपनाया था, मै जान गया, कण्णन् को!

कण्णम्मा[1]: मेरी बिटिया

नन्ही सुगनी कण्णम्मा, लाडो की निधि मेरी।
कलिमलहर कलितीर्थतुल्य तरने की विधि मेरी।
लाडोकी विटिया कण्णम्मा, जीव-स्वर्ण-प्रतिमा।
झूम रही मेरी मधु, मेरी अक-ललक-सुषमा।
तू दौडी आती कण्णम्मा, देख पुलकते प्राण।
तुझे खेलती देख, लिपटने हेतु लपकते प्राण।
हृत्तल को गर्वित करता तेरे मस्तक का घ्राण।
तेरे गुण का श्रवण पुलकमय करता तन-मन-प्राण।
तेरे गाल चूमकर उच्छल होती मनस्तरग,
गले लगाकर मादकतामय अतरग-प्रत्यग।
विटिया आकुल हो उठता मन, तेरे मुख पर देख
कोई हलकी-फुलकी-सी भी तँवियाहट की रेख।
विटिया, तेरे माथेका कुचन, तेरा भ्रूभग,
घबराहट से भर देता है अतरग-प्रत्यग।
विटिया, तेरी आँखो मे डवडवा उठे यदि नीर,
तो छुट चलती रक्तधार मेरे अतर को चीर।

---

१ कण्णन् (कृष्ण) का स्त्रीलिंगी रूप।

मेरी आँखो की पुतली, न्योछावर तुझ पर प्राण।
सुना तोतले बोल, दुखो से कर दे मेरा त्राण।
कलिका की-सी मुस्कानो से मेट सकल अज्ञान।
तुझ-सी मधुर कथा, कण्णम्मा, किस पुस्तक की शान ?
प्रमोद्गम तू, तुझ-सा देव न पा सकता ससार।
तुझ-सी श्री-सपदा कहाँ ? मणि, वक्षो का शृङ्गार ?

कण्णन् : मेरा नटखट रसिया

बडा ऊधमी नटखट रसिया कण्णन् है।—
वेढव-सी उसकी क्रीडापरता है।
गलियो मे हम युवतिजनो से नित्य छेड करता है।
बडा ऊधमी

लाता है फल बरबस हमे खिलाता,
खाती हो तो मुँह से झपट उचक लेता है।
बडे निहोरे करवाता, फिर जुठलाकर देता है।
बडा ऊधमी

सु दर फूल दिखा ललचाता, कहता 'आँखे मूँदो,
यह फुँदना गूँथूँ वेणी मे।'
मूँदूँ, अपर सखी सज जाती, कटकर रह जाती मैं।
बडा ऊधमी .

वेणी पकड खीचता है, मुडकर देखूँ तो
ओझल हो जाता है, तरसाता है।
सु दर पट पहनो तो उमपर रजधन बरसाता है।
बडा ऊधमी .

अधराधृत मुरली पर सुधा-मधुर धुन टेरा करता ,
रोम-रोममय कान लगाये
हम मतवाली-सी सुनती हैं, नयन मूंद, मुँह वाये ।
वडा ऊधमी

खुले हुए मुंह मे कण्णन् रख देता है चीटे कुछ ।
ऐसा देखा-सुना कही है ?
कण्णन् की इस छेडछाड का कोई छोर नही है ।
वडा ऊधमी

कणान् : मेरा प्रीतम (१)

तडपता रहा अतर खुले दिये की लौ-सा
कब से, मैं बसी के मीन-सी।
पजर-शुक-सी उदास मैं, सखी, अकेली,
अनि रुचि से हो रही उदासीन-सी।

× × ×

रुचा नही अन्नग्रास, सुमन-गध या सुगधि,
आँखो से उडी रही नींद, सखि।
बेचैनी बन रही स्वभाव, चैन के अभाव
के पल मन गये बोध-बीध, सखि।

दूध कसैला लगा, चुभी तन मे सुखशय्या,
कानो मे शुक के मधु-बैन छुके।
वैद्यो ने कहा 'अब नही आशा।' 'ग्रहबाधा,
ग्रहबाधा' जोगीजी पुल पर के।

तभी दिखा सपना, जो धुंधला ही था, परतु
कोई मेरा अतर छू गया।
मै जब जागी, देखा · वह तो था अतर्हित,
किंतु दे गया अनत सुख नया।

पुलकावलि बढी, सुस्थ-स्वस्थ मैं हुई, सजनी ,
घर-आँगन फिर से भाने लगा।
छाई मन मे उमग, उमग उठे अग-अग ,
वस्तुमात्र मे रस आने लगा।

सशय मिट गया, उमड पडा रूप का मोहन ,
सुधि मे बस गया वही करस्पर्श।
यह नवीन सुख, यह सुखदानुभूति की विभूति
रह-रह भर जाती उल्लास-हर्ष।

यही सोचती थी मैं बार-बार सपने मे
आकर जिसने वर ली आकुल वृति ,
कौन भला होगा वह?—तभी फिरी नयनो मे
कण्णन् की मनमोहन सौम्याकृति।

कण्णन् : मेरा प्रीतम (२)

जाओ जाओ, सजनि ! थाह कण्णन् के मन की लगाओ, सजनि !
थाह मिल जाये तो कुछ किये भी बने, भेद लाओ, सजनि !

बातें निर्जन नदी-तीर पर जो हुई, सुधि दिलाओ, सजनि !
नाम धरवाऊँगी, डौंडी पिट जायेगी,—यह बताओ, सजनि !

× × ×

हाय, अबला-जनम है व्यथा से भरा इस मही में, सजनि !
पापिनी वेणु-धुन प्राणों में बस गयी, घुल रही मैं, सजनि !

वह कहे तो सही बात दो टूक, दुविधा मिटाओ, सजनि !
भाग्य-भगवान् का फिर भरोसा मुझे !—जाओ जाओ, सजनि !

कण्णन् : मेरा प्रीतम (३)

किससे कहूँ सजनि, मैं तो प्रिय के मुख की सुधबुध विसरी ?
मन तो बिसर न सका नेह, मैं कैसे छवि की सुध विसरी ?

× × ×

मधु-बिसरा मधुकर, दिन का-उजियाला-विसरी कुसुमकली,
जलदघटा-बिसरा बिरवा, किसने कब देखा-सुना, अली ?

कण्णन् की-आननछवि-विसरे नयन रहे किसलिए भला ?
रहा जीवनाधार कहाँ, जब रही न वह प्रिय चित्रकला ?

कण्णम्मा : मेरी दयिता

तू उमडती दीप्ति, नयनो की नयन तू ,
मैं विलोकन-लोल लोचन दीप्ति-घन तू !
तू कुसुमरज है कि मैं तुझमे नहा लूं ,
मैं—मधुप, मँडरा रहा कि सुयोग पा लूं !
तू अमित-महिमा, कहां तक गुण कहूँ मैं ?
यह असभव जानकर ही मूक हूँ मैं।
तू महाज्योतिष्प्रभा है, पावनी है।
प्रिये, कण्णम्मा, सुधा तू प्लाविनी है।

तू प्रिये मेरे लिए परिवादिनी है ,
वादकागुलि मैं परस्परता घनी है।
मैं गुंथूं जिसमे, वही तू हार-लतिका ,
नव्य हीरकखड मैं तेरी ग्रथिति का।
जो प्रभा सर्वत्र-विकिरणशील, उज्ज्वल ,
कात तेरे नयन उसके उद्गमस्थल।
हे महासम्राज्ञि, वर-प्रभविष्णुतामयि ,
प्रिये, कण्णम्मा, प्रकृत हे जीवनाश्रय !

सजनि, तू मेरे लिए नवघन घटा-सी,
मैं प्रमत्त मयूर मेघरवानुलासी।
भरण तू मेरे लिए पीयूष-रस का
और मैं आधान तेरा रसकलस का।
सुमुखि, तेरा दीप्त ज्योतिष्मान् आनन
किया करता ज्ञान का आलोक-विकिरण।
हे महासौंदर्यनिधि अनवद्य, रस की
धार, कण्णम्मा, अजस्र अमर-निघस की!

तू अमोघाकर्ष राका-ज्योत्स्ना है,
मैं उफनता उदधि, तल उच्छलमना है!
तू सजनि, मेरे लिए स्वरयोजना है;
गीतिरस मैं सरव तुझसे ही छना है!
विफल-श्रम हतचेष्ट मेरी भावना है:
अगम तेरी माधुरी की कल्पना है!
लोचनों की ज्योति-सी दयिते, प्रकर्षिणि,
प्रिये, कण्णम्मा, सतत-पीयूषवर्षिणि!

× × ×

प्रेम तू मेरे लिए. ममता-कुटुम्बक,
और मैं तेरे लिए हूँ कांत चुम्बक!
वेद्य तू मेरे लिए है वेद की ऋक्,
और मैं तेरे लिए विद्या अमर-दृक्!
जब कि मुझमें हो रहा हो बोध समुदित,
तू उमडती-घुमडती मधुभावना चित।
प्राण मेरी, नादरूपिणि, स्वरविलासिनि,
प्राण मेरी, प्रिये कण्णम्मा, सुहासिनि!

श्वास तू मेरे लिए जीवत की गति
और नाडी-स्पद तू मेरे लिए, सति।
सपदा मेरे लिए तू न्यास की है,
न्यासपालक मैं, जिसे निधि तू मिली है।
अतुल - सीमाहीन - सुन्दरता - ललामे,
सर्वव्यापिनि, ज्योति - निर्मित - देह वामे।
यूथिकाकलि - सदृश - मृदुहासानपायिनि,
प्रिये, कण्णम्मा, अमित - आनददायिनि!

तारका मेरे लिए तू है समुज्ज्वल,
और मैं तेरे लिए शुभ्रांशु शीतल।
शूरता मेरे लिए तू सर्वसक्षम,
और मैं तेरे लिए हूँ विजयविक्रम।
भोग्य हैं सुरलोक या भूलोक भर मे
स्वस्ति या सुखभोग जितने भी, निरुपमे,
सभी पुञ्जीभूत तुझमे है, सुखकरि,
प्रिये, कण्णम्मा, सुधा - सारघ - रसेश्वरि!

मधुघोष गीत का, ललित लास ललनाओ का,
रसकाव्यो की रचना, गुणियो के कारुकर्म
चलते ही रहते थे उस नगरी मे सतत।
बलवत् तुरग, रथ बृहत्, मतग-मतगज थे।
रहती थी भारी भीड देखती मल्लयुद्ध।

खनियाँ थी प्रचुर-प्रदा, मणियाँ थी प्रचुर-प्रभा,
प्रियदर्शन प्रियसौरभ थी प्रिय पुष्पावलियाँ,
धूपादि अधिकगधी, रसाल फल, स्वादु अन्न.
सब सुखसाधन थे सुरदुर्लभ, था नित्य हर्ष।

× × ×

(४) दुर्योधन-सभा

कज्जल-श्यामल-जल, अति-गभीर-तल, दीर्घ-पटल,
अवगाहसुखद - रमणीय - मधुरपानीय - सलिल
यमुना है, जिसके काचन तट पर भव्य नगर
था बसा, जहाँ उन्नत - कुरुराज - फणीकेतन,

विख्यात, साहसी, उन्नतभाल दुर्योधन की
थी बनी राजधानी। दुर्योधन का भुजबल
था शत-शत-गज-बल-पुज! तभी तो वेद-व्यास
कह उठे कि 'यदि हठ-वैर ठान ले दुर्योधन,
तो बधु-गहन के लिए भी बने दावानल'।

× × ×

भुजबली महाराजा वह पित्राज्ञानुसार
करता था राज। अनेक राजनीतिज्ञ वृद्ध
मन्त्रीगण उसकी राजसभा की शोभा थे
चिरकीर्ति-अमर, धर्मज्ञ पितामह भीष्म, पूज्य
ब्राह्मणकुलसभव क्षत्र-वीर आचार्य-युगल,[१]

ऋतविज्ञ विदुर इत्यादि। पार्षदो मे कुवृत्ति
राजानुज, कुक्रिय शकुनि आदि यदि थे तो क्या?
कर्णादि उदाराशय, दानी प्रतिभाशाली,
रणशूर, स्वाभिमानी, स्वमुक्ति-अनभिज्ञ तथा
राजा के प्राणो के समान प्रिय जन भी थे।

(५) दुर्योधन की ईर्ष्या

धनराशि अपरिमित, एकछत्र राज्याधिकार,
भू पर अनन्यजनलभ्य सैन्य सागर-विराट्,
सुरपुर मे सुरपति-सुलभ सकल सुखके साधन
नरपुर मे पाकर भी अतुष्ट धृतराष्ट्रपुत्र
जलता रहता था 'जब तक ये पाडव भू पर
फिरते है सिर ऊँचा कर, तब तक मेरा यह
पौरुष पौरुष क्या, राज राज क्या, यश यश क्या?

---

१ कृपाचार्य और द्रोणाचार्य (ब्राह्मण होकर भी कर्म और शौर्य मे क्षत्रिय आचार्य-द्वय)।

गाडीवी पुरुषर्षभ अर्जुन की आँखो में ,
प्रभविष्णु भीम के हृत्तल मे जो अकित है
अपमान-भाव मेरे प्रति, वह भूलूं कैसे ?
कर लिया यज्ञ यदि धर्मराज ने, तो क्या वह
हो गया अधीश्वर भारत भर के भूपो का ?
क्यो नारदादि मुनि सिद्ध कर रहे यही बात ?

वह तो कहिये यदुवश-चोर ने चाल चली
एव अनुजो के भुजवल की मिल गई टेक,
सम्राट् बन गया वह कापुरुष युधिष्ठिर भी !
कैसे भूलूं उपहारो की वह अमित राशि

जो लाये थे अयुतायुत भूप मुकुटधारी
एव सामत-प्रमुख . वहुमूल्य महीन वस्त्र,
अगणित मणिकाचन-हार, रमणियाँ सजी-धजी
अगणित, अगणित सज्जित तुरग, रथ सजे-धजे ?

× × ×

आकाश टूट पडने पर भी जो किंचित् भी
विचलित हो पाता नही, वही पाषाण-हृदय
यो खिन्न हो रहा था, ईर्ष्या मे जलता था,
ज्यो ज्वालामुखी स्वनिर्गत द्रव्य द्रवानल मे
झुलसे। समस्त भूताप फूटकर उमड पडे
ज्यो, त्यो ही उपचित ईर्ष्या भडकी, झुलसा मन।

दुर्योधन अपना पौरुष, दृढता, मान, शक्ति,
सब भूल व्यथित अबला-सा, बालक-सा व्याकुल
हो उठा। किंतु निमिषांतर मे ही पापबुद्धि
चेती 'चाहे जो हो, जैसे भी हो, परंतु
पांडव का जीवन-नाश मुझे करना ही है।'

वह पापातुर था, किंतु 'पाप यह कैसे हो'—
इसका उपाय कुछ सूझ न पाता था उसको।
इतने मे शठता-कपट-मूर्त्ति अपने मामा
शकुनि का ध्यान उसके मन मे सहसा आया।
पहुँचा मामा की शरण। कही मन की। उसाँस
भरकर अपने जी का गुरुभार किया हल्का।

सम्राट् युधिष्ठिर - श्रेष्ठानुष्ठित राजसूय,
उस महायज्ञ मे महावृष्ट अमितोपहार,
अमितार्घ रत्न-हीरक-मणि मौक्तिक-हेम-हार,
उपहारो से भी बढकर हार्दिक अर्घ्य मान
जो धर्मराज को प्राप्त हुआ था अनायास,—

इन बातो से एव इनकी प्रतिक्रिया-रूप
अपने मन की जो दशा हुई थी, उसका भी
विवरण विस्तार - सहित मामा की सेवा मे
वह धूर्त्त निवेदित करने लगा चतुरता से।

(७)[1] शकुनि की चाल

ईर्ष्या से कुढे वचन दुर्योधन के सुनकर
मामा शकुनि ने कहा, 'वस इतनी बात?—अजी,
लो, अभी आज ही विजयी तुम्हे वनाता हूँ।
छोडो भी व्यर्थ विमर्शन, मेरी बात सुनो
बनवाओ एक निराला दिव्य सभामडप,
आमन्त्रित कर उसके अवलोकन के निमित्त
बुलवाओ पाडुसुतो को,—फिर अवसर पाकर
हम उन्हे द्यूत-क्रीडा के लिए करे उद्यत,—
वस क्या है, एक पहर मे ही अपना सरवस
हारेगे और तुम्हारे दास बनेगे वे।
शकुनि का द्यूत-कौशल तो तुमसे छिपा नही!

'यह नही कि उनसे रण करना हो शक्य नही,
पर कौन कहे रण मे जय हो कि पराजय हो?
फिर, पाडव भी ऐसे-वैसे रणवीर नही!
अर्जुन-धनु ही अनुपेक्ष्य, नही जिसका द्वितीय!
यह अनुपपन्न मान्यता कि अनुचित अक्षवती!
अक्षजितविपक्ष हुए हैं कितने पूर्वनृपति!

सोचो तो, राजा रण करते हे किस निमित्त?
बस इसीलिए न कि मिले देश, जन और वित्त?
या रक्तधार-शवराशि देख हो हृष्टचित्त?
यदि अक्ष जीत दे देश प्रजापूरित सवित्त,
तो वने पहर मे काम, मिटे चिता समस्त।
मेरा तो मत वस यही।'

---

१ अनतर्मुक्त उपशीर्षक '(६) शकुनि के प्रति दुर्योधन का वचन।'

—शकुनि जब हुआ मौन,
सुनकर उसका खल-वचन खिल उठा दुर्योधन।
अपना मणिकाचन हार दिया उपहार उसे
एव बोला, "यह कही पते की! धन्य-धन्य
मामा! जग मे तुम-सा हित मेरा नही अन्य।'
फिर होकर हर्ष-विभोर शकुनि को गले लगा
छाती से कसकर चिपकाया दुर्योधन ने।

× × ×

(१५)[1] मडप-निर्माण

'यह शिल्पि-श्रेष्ठ का कलित कम्रतम कलाकर्म!'
'यह सुन्दरतम सपना रस-सिद्ध कवीश्वर का!'
'यह कलासिद्धि का चमत्कार!' 'यह कलासिद्धि!'
—ऐसे प्रशस्तिमय वाक्य देश मे गूंज उठे,
उस दिन से जिस दिन काचन-मणि-माणिक्य-जटित
उस दिव्य सभामडप की पूर्ण हुई निर्मिति!
मानो वह निर्मिति काव्यरसोद्रेचक कोई
घटना हो अथवा हो सुरम्य रमकाव्य स्वय!

---

[1] अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(८) धृतराष्ट्र के प्रति शकुनि का वचन,' '(९) धृतराष्ट्र का उत्तर,' '(१०) दुर्योधन-कोप,' '(११) दुर्योधन का कटु वचन,' '(१२) धृतराष्ट्र का प्रत्युत्तर,' '(१३) दुर्योधन का प्रतिवचन' और '(१४) धृतराष्ट्र की स्वीकृति'।

(१६) विदुर-दौत्य

बुलवाकर अपने अनुज विदुर को महाराज
धृतराष्ट्र उन्हे दूतत्व सौंपकर यो बोले
"ले यथायोग्य उपहार सभी के लिए आप
भ्रातुष्पुत्रो के पास जाइये इद्रप्रस्थ।
कहिये कि 'आपके स्नेही ताऊ कौरवेश
सस्नेह निमत्रण प्रीतिभोज का देते हैं।
पाँचो पाडव-भाई पधारिये सपत्नीक।'
फिर उन्हे सर्वजन-मुक्तकठ-शसित नवीन
इस राजसभा मडप की निर्मिति से अवगत
करके कहिये सदेश कि इस बूढे का जी
कब से यह चाह रहा था उनको बुलवाता।
उस राजसूय मे प्रत्यागत होते ही यह
सकल्प हुआ कि किसी दिन अपने नामधन्य
प्रिय कुन्ती भतीजो को बुलवा लूँ किसी व्याज।
यह प्रीतिभोज मिलने का एक बहाना है।'

(१७) विदुर-प्रयाण

अग्रज का अनुशासन लेकर चल पडे विदुर।
लाँघे अनेक अटवी-अपगा-अवनीधर-पुर।
गतव्य सुदृढभुजहृदय-पचपाडव-प्रदेश-
हृद्देश राजधानी सुरम्य। पथ-वितत देश
था प्रचुर शस्य-सपन्न। देखकर उसकी श्री,
यह सोच विदुर हो उठे विवशता-कातर-धी:

यह नील-किरीटी गिरिराजो का पुण्यदेश,
यह सुधा-सलिल-स्रोतस्विनियो से धन्य देश,
यह उपयोगी द्रुम-व्रतति-वनस्पति-रम्य देश,
उपवनो-वनो-उद्यानो का यह कम्र देश,
जगदुदरपूर्ति-क्षम धान्यराशि-प्रद उर्वर भू,
पय-दधि-घृत-मधु-सेवन-सुपुष्ट-जन-प्रजा-प्रसू,

× × ×

यह धर्म कर्म सबमे उदात्त-गुण-शील देश,
उद्योग-कला-साधना-सिद्धि से श्रील देश,
यह शौर्य-विमण्डित तत्त्व-ज्ञान से दीप्त देश,
यह विद्या-यागादिक से उज्ज्वल-दीप्ति देश,
चौर्यादि पापकर्मो से परिचय भी न लेश,
जिसका, वह विश्वशिरोमडनमणि-तुल्य देस
भारत ?—इस भारत के विनाश के हेतु, हाय,
बन रहा आज मैं कैसे दुर्जन का सहाय !

(१८) विदुर का स्वागत

हो अति प्रसन्न सुन तात विदुर के आने की,
पाडव वीरो ने मगलौघ, चतुरग चमू,
वादित्र वृन्द, उपहार-राशि इत्यादि सग
लेकर अगवानी के निमित्त प्रस्थान किया।
नतशिर हो उनके श्रीचरणो मे, स्नेह-भरे
स्वर मे कुशलादिक पूछ, ले गये राजभवन।

× × ×

(१९) 'विदुर-निमन्त्रण

आसीन स्वर्ण-मडप मे पाँचो पाडव थे ,
एकात देखकर उनसे कहने लगे विदुर
'गिरितुगबाहु, यश के महान् भागी, पुनीत ,
श्री के एव भू के अनन्य स्वामी, अधीत
बहुश्रुत विद्वद्वर, धृति-धुरीण, राजाधिराज
धृतराष्ट्र आप-सबके प्रति शुभकामनापूर्ण
आशीर्वचन करते हैं·
'पाँचो चिरजीव
चिरजीवी हो, सब दिव्य श्रेय के भागी हो ,
कल्याणयुक्त हो।'
उनका यह सदेश सुने

'मगल-श्री-युत हस्तिनापुरी मे अद्वितीय
रमणीय, जगत् भर मे अनन्य परिपन्मडप-
निर्माण आपके सभी भाइयो ने मिलकर
करवाया है , उसको अद्भुत श्री के दर्शन
कर ले आकर, मेरा सप्रेम निमन्त्रण है।'

सप्रेम निमत्रण प्रीतिभोज का भी भेजा
है महाराज ने। एक बात, प्यारे पुत्रो ,
अपनी भी बतला ही दूँ मै यह भेद-भरी
दुर्योधन खो बैठा है अपना शील, मूर्ख
वह धूर्त्त शकुनि के बहकावे मे आया है
उसका मनोग है मडप-दर्शन के निमित्त
आमन्त्रित होकर आप अक्षदेवी-प्रेरित
किल्विष मे फँस दुरवस्थ हो रहे। हा कुचक्र !'

(२०) धर्मपुत्र का उत्तर

सुन विदुर-वचन हो उठे विकल-मन धर्मराज ।
बोले "सुनकर परिपन्मडप-निर्माण तथा
द्यूतायोजन की वात, क्लेश से पीडित मन
रह-रहकर आशका से भी भर रहा, आर्य !
शुभचितक तो है नही हमारा दुर्योधन।
उस पर विश्वास करे हम, यह क्या सभव है ?"

× × ×

(२२)[१] धर्मपुत्र का निश्चय

आदेश तात का, अवर-तात का तात-दौत्य !
आगा-पीछा करना अव मेरा धर्म नही !
जो भी होना हो सो हो, चिता नही मुझे !
आदर्श हमारा निश्चय राम-धनुर्धर का !
निंदा का काम कदापि नही हमसे होगा !
चिरमान्य नीतिपथ पर ही सदा चलेगे हम !
राजाधिराज के पालनीय अनुशासन के
अनुपालन मे दुविधा अनुचित, अनुवृत्ति धर्म !
रणवीर भीम, कल-परसो दो दिन है, प्रस्तुति
कर लो, उपवनशोभी हस्तिनापुरी-यात्रा
करनी है, सज लो रथ-गज-तुरग-पदाति सैन्य !

---

१ अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(२१) विदुर का प्रत्युत्तर'।

(२६)[1] पाडव-प्रयाण

चारो अनुजो, पाचाल-वश की सजी ज्योति ,
समुचित मगल-वादित्र-ओघ, अगणित-परिजन
एव ' चतुरग चमू संग लेकर धर्मपुत्र,
जिसने न किसी का कभी बुरा चाहा, प्रस्थित
अपनी नगरी को छोड वहाँ के लिए हुआ,
था जहाँ पराहितकामी लोगो का निवास ।
जो भी पथ दिखलाये विधना के आयत कर,
उससे हटने की किसमे है सामर्थ्य भला?

विधना चाहे तो अनहोनी भी होती है
मृगपति शृगाल के जालक मे फँस जाता है,
चीटी भी कुजर का जीवन हर लेती है,
कृमि भी रेखिल चीते का वध कर देती है,
अपने ऊपर बहती सरिता की धारा मे
औंधा या सीधा बहता है गिरि निरालव ,
हो जाते है मति-भ्रात भविष्यद्-वेत्ता भी ,
नीचो की स्तुति करते है धर्म-धुरधर जन ।—
क्या-क्या न कराता वाम विधाता जगती मे ?[2]

---

१ अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(२८) भीम की वीरोक्ति,' '(२४) धर्मपुत्र का दृढनिश्चय' और '(२५) चारो भाइयो की स्वीकृति' ।
२ अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(२७) सध्यावर्णन' ।

२. अक्षवती

(२९)[1] पांडवो का स्वागत

हस्तिनापुरी मे आर्य पाडवो का आना सुनकर
उमडा घर-घर से, गली-गली से, जनसमूह-सागर।
तिल धरने तक को ठौर नही था कही नगर मे शेष।
अचरज तो था यह जनता अब तक रहती थी किस देश!

× × ×

कुरुराज-भवन मे हुए वय क्रम से प्रविष्ट पाडव।
परिषदासीन दृग्धीन तात के प्रति स-विनय-मार्दव
प्रणिपात निवेदित किये उन्होने, आशिस्-वरण किये।
फिर पूज्य पितामह गगात्मज के पूजित चरण किये।
फिर धनुर्वेद-पारग-कृप-द्रोणादिक-गुरु-चरणो पर
माथे टेके। गुरुपुत्रो का भी नमन किया सादर।
फिर दानवीर अगाधिराज, अहिकेतन दुर्योधन,
उसके अनुजो एव मामा शकुनि का समालिगन
करके प्रसन्नमन हुए। यथोचित मानादर के साथ
साध्वी गाधारी आदि नारियो को भी जोडे हाथ।

× × ×

---

[1] अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(२८) सरस्वती से प्रार्थना'।

चदनचर्चा से, सुरभिसुमन-सज्जा से, सुरभिमयी
युवतियाँ सुनाती थी वीणा पर मोहक गीति नयी।
सुश्रव ध्वनि के मोहन मे पाडव निद्रामग्न हुए।
भावी दुख से डर भला आर्य कब चितामग्न हुए?
आगत-अनिष्ट-वारण ही उनका सदा इष्ट होता।
उनका चरित्र अतर की-निश्छलता-विशिष्ट होता।

(३०) सभामडप मे पांडवो का आगमन

रवि से पहले जागे पाडव सुनकर वैतालिक-गान।
फिर देव वदना-लीन हुए वे अतुलितभुजबलवान्।
सुन्दर दुकूल, आभूपण, आयुध आदि किये धारण।
परिप-मडप की ओर चले, कुरुनेता दुर्योधन
अपने दुश्शील कौरवो के सँग जहाँ विराजित था।
गागेय, धर्मप्रिय विदुर, विप्रकुल, राजामात्य तथा
देशातर के राजन्यवर्ग भी पहले से आसीन
हो चुके वहाँ थे। पापाक्रात, कुमति, अधर्म मे लीन
दुर्योधन के सब पुत्र-मित्र इत्यादि उपस्थित थे।
पाडव जा साजलिबध वृहत् मडप मे खडे हुए।

(३१) पण-निमत्रण

'आओ हे धर्म, पधारो,' स्वागत-वचन शकुनि बोले।
'ये सुबलबाहु नृप वडी देर से राह देखते थे।
भू-विजय उपार्जित की है तुमने प्रवल धनुर्वल से,
कुल-कीर्ति वढाई है। अब देखे तो, कितना बल है
पाडव मे, अक्षवतो-रण-दक्षिण कितना कौशल है?'

(३२) धर्मराज का अनंगीकार

सुन धर्मराज ने कहा 'आर्य, छलसद्म कितव के हेतु
बुलवाया है हमको ! बतलाये मर्यादा का सेतु
क्या कितव-महत्ता है ? औचित्य भला उसका क्या है?
क्या न्याय द्यूत का है ? —मेरी अभ्रात धारणा है
सुख-शाति हमारी नही आपको तनिक सुहाती है !
मन मलिन आपका है ?—हठ कर शठता इठलाती है !
बस इसीलिए तो आप समुद्यत है कि लोक-परलोक
दोनो बिगाडकर हमे दले ?—हा हीन कर्म ! हा शोक!"

(३३) शकुनि का उपालभ

सुन अट्टहास कर उठे शकुनि शास्त्रवत्-द्यूत-समधीत ।
बोले .'रहने दो वडी-वडी बाते, रहने दो नीति !
हम तो समझे थे तुम सम्राट् बडे हो, सम्पद्-वान् ;
कुछ हारो-जीतोगे भी तो आपत्ति न लोगे मान ।

× × ×

जो हो, आशका तो छोडो, हो चुकी बडी ही देर !
प्रस्तुत है देवन, शारि, शारिफल, अब मत करो अवेर !
जय सिद्ध तुम्हे है, जीत तुम्हारी होगी क्यो न भला ?
चिन्ता छोडो, ले लो पाशक !"—आग्रह शकुनि ने किया !

× × ×

(३७)[1] अक्षवती

स्वीकार अभिग्रह किया युधिष्ठिर ने। छल वाला अक्ष
जब उठा लिया तो शकुनि हर्ष से मत्त ठोककर वक्ष
चिल्लाया। धर्म-सुनीति-शील-विद् स्नेही विदुर समान
सब बंधु मूक हो रहे, मूढमति-से हो रहे सुजान।

× × ×

पण पर मणिहार लगा अमूल्य, विनिमय-धनराशि लगी।
पल-मात्र लगा, जीता मातुल, उसकी चल गई ठगी।
फिर से 'सुवर्णपूरित सहस्र घट' अनघ युधिष्ठिर ने
जो दाँव बदे,—ले लिया धूर्त ने, पलक तक न गिरने
पा सकी। 'महाजव वृहत् स्वर्ण रथ' फिर पण रखा नया,
पाशक था फिंका नहीं कि शकुनि वह पण भी मार गया!

× × ×

दल के-दल गोधन, सेवक, परिजन, पण बद बद हारे!
निष्ठुर शकुनि ने युधिष्ठिर को तब यों मिहने मारे
"रुक गये भला क्यों धर्मपुत्र, अब भी कुछ नहीं कमी;
लो पाशक और लगा दो पण इस बार राज्यलक्ष्मी!"

---

[1] अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(३४) धर्मपुत्र का प्रत्युत्तर,' '(३५) शकुनि का अभिग्रह,' '(३६) धर्मपुत्र का अभिग्रहांगीकरण'।

(३८) विदुर की आपत्ति

उठ बोले विदुर 'अय्य ! यह क्या ? यह दानधर्म है ? छि !
क्या तुले हुए हो पांडव-राज्य-हरण पर सचमुच ही ?
सह लेगी सर्वंसहा इसे क्या ? क्षमा करेगा स्वर्ग ?
धिक् धूर्त पुत्रगण !—तुम्हीं कहाते उच्च चन्द्रकुल - सर्ग ?

पांडव सह लें, पर पांडव-सुहृद् जनार्दन-द्रुपदादिक यदि
हो गये कुपित तो कर देंगे कुलवृन्द-नाश बीजावधि !
समवेत सभी कुरु-क्षत्रिय पुत्रों से करबद्ध विनय है
रणबीज न बोओ, वरन् नाश निश्चय, ध्रुव-भाव्य निरय है !

× × ×

यह कभी न सोचो, धर्म-भ्रष्ट हो सुखी बनेगा जीवन !
इस धूर्त शकुनि का द्यूत मित्र को शत्रु करेगा । जग-जन
प्रति-निमिष करेंगे भर्त्सन । जग से निंदित होकर शासन
करने की इच्छा क्या समुचित ? सोचो तो स्थिर करके मन !
बस अभी रोक दो अक्षवती !—मंगल का पथ केवल यह !"
यों विदुर व्यथा से मथित हृदय से करते रहे सदाग्रह ।

३. पराभव-पर्व

(४१)[१] दुर्योधन का प्रतिवचन

हे कृतघ्न निर्लज्ज विदुर! तुम नमक हमारा खाते,
पर हमसे चिर-द्रोह निभाते, चिर-दिन नाश मनाते!
तुम्हे पिता ने मान दिया!—कैसे कुछ उन्हे कहूँ मैं?
वृद्ध-बुद्धि को कितना कोसूँ?—कितनी हानि सहूँ मैं?

पाडव के प्रति लगन तुम्हारी, उदर-भरण कौरव से!—
जन्मजात यह वृत्ति तुम्हारी लक्षित है अनुभव से!
बडे न्यायधर्मज्ञ, पारखी सत्यनीति के बनकर,
लेकर पाडव-पक्ष, हमारी क्षय के रचते चक्कर!
भरी सभा है, खुले बोल है, यथा-रीति पण-जय है!—
इसमे कैसा नीति-दोष है, किस अधर्म का भय है?
किसे सुनाते नीति?—यहाँ हम डाका डाल रहे है?
अथवा वचकता के, छल के, जाल सँभाल रहे हैं?

× × ×

[१] अनतर्मुक्त उपशीर्षक, '(३९) पराशक्ति-स्तवन', '(४०) सरस्वती-स्तवन'।

(४२) विदुर-वचन

× × ×

"नरपति, मत अनसुनी करो, हित-वचन भले अप्रिय है !
इस परिषद् के सबल क्षत्र, ब्राह्मण अमात्य, सब-के-सब
परम पतित, जड, नीच, दुराचारी, अशिक्षित, निष्क्रिय है !

× × ×

भले अकिंचन हूँ, विधिगति का ज्ञाता मन निश्छल है !
इसीलिए हे वत्स, तुम्हे अवहित कुचक्र से करना
चाह रहा था, अब समझा कुछ भी कहना निष्फल है !"
विदुर मौन हो रहे। झुकाये गरदन फिर से आसन
ग्रहण कर लिया। कलि प्रसन्न हो उठा 'टिकूँगा अब मैं !"
सुर प्रसन्न हो उठे 'मचेगा घोर महाभारत-रण !'

(४३) अक्षवती का नवपर्याय

फिर से पडने लगे अक्ष, फिर अक्षवती गरमाई।
चतुर शकुनि का आग्रह बढा "युधिष्ठिर, मन मत हारो,
नवोत्साह से लौटा लो, जो भी सपत्ति गँवाई !"
रक्षक गृह का, विग्रह का विक्रय ज्यो करे पुजारी,
त्यो ही धर्मनीति के ज्ञाता धर्मराज ने अपना
राज्य दाँव पर रखा, गँवाया ! धिक् !—पातक यह भारी !
शासक-वर्ग प्रजा को मनुज नही पशु गिनता भरसक !
रची सत्य या नीति-तत्व की विविध पोथियाँ यद्यपि,
राज्यविधान तथापि न समुचित मनुज रच सका अब तक !

× × ×

(४४) शकुनि वचन

"सरवस गंवा चुके धर्मात्मज ! शेष कथा यह केवल
'धर्मराज धोरी था कोई श्रीधरणी धरणी का !'
मेरी सुनो ! रखो वह पण कि फिरे धनधाम चलाचल !
हुए अकिंचन, किस धन पर सानुज निर्वाह करोगे ?
हम न चाहते खेल अभागा तुम्हे बना दे याचक !
बली, वीर, पण योग्य अनुज हैं, ग्लह इनको न धरोगे ?

× × ×

गुहापिहित-अहि-फूत्कृति सांसे भरी भीम ने भीषण !
अर्जुन का कदर्प सौम्य मुख मुरझाया। व्रत-नैष्ठिक
नकुल हुए निश्चल। त्रिकाल-दर्शी कनिष्ठ हत-भाषण !
दहल उठा गागेय-हृदय। दुस्सह-रोषान्वित नृपगण
लगे हांफने। शिथिल विदुर का बुरा हाल था। बेवस
रहे देखते सभी श्वाधमाक्रांत पंच-पंचानन।

(४५) पण : सहदेव

'सदा-ब्रह्मचिंतनरत, जीवन खेल समझकर रीता
सदानंद रहने वाले अनुपम मनस्विवर पण है !'—
धर्मराज ने पांसा फेका, दुष्ट शकुनि ने जीता।

(४६) पण : नकुल

नकुल हुए पण और युधिष्ठिर खो बैठे उनको भी।

× × ×

(४७) पण : पार्थ

'कण्णन् का प्रिय सखा, हमारा कनीनिका-सा प्यारा,
रूप, रंग, बल, चरित, तेज मे बढा-चढा सुर से भी,
अगणित गुणनिधि, कृती, वीर अर्जुन को जीतो, हारा!'—
मायावी मातुल मन-ही-मन फूला। माया - पाशक
कर मे लेकर अक बताया, अक वही चित आया!—
पीतल को भी कनक बनाते चतुर, छली, जग-वचक!

(४८) पण : भीम

× × ×

'पचपाडवाग्रणी, मूल-बल-सा पाडव-शासन मे,
सम्मुख रण मे परमदेव पर भी अधिकक्षम-विक्रम,
दीर्घशुण्डकुञ्जरबहुगुणबल भीम जीत लो पण मे!"—
समरनिहत-गज-पतन-मुदित प्रेतादि और पललादन
गृध्र-काक - श्वापद - शृगाल - से चिल्लाये, बर्राये,
उछले, भुज ठोके, प्रहृष्ट झूमे या वक्ष फुलाये
फिरे धूर्त्तजन बली भीम पणविजित देख प्रमुदितमन!

(४९) पण : स्वयं धर्मपुत्र

मत्त-चोर-से कौरव थे। पर नीच शकुनि मुसकाया,
पूछा 'अगला दांव ?'—युधिष्ठिर सुधि भूले थे, बोले
'मैं ही बचा !'—उन्हे भी लील गई मातुल की माया !

(५०) दुर्योधन-वचन

उठ बोला दुर्योधन "पाडव-भाग्य हुआ अस्तगत,
तेज बुझा। अब स-निधि सकल धरणी हो गई हमारी।
राजाओ, जय बोलो, जय-सवाद करो जगदवगत !"

(५१) शकुनि-वचन

"अभी नही। अब भी सभव है पलटे पाडव-व्याहृति,
पलटे देश, प्रजा, धन, सोदर, मान आदि यदि पण हो
सुभगा पाडव-प्रिया द्रुपदजा,—सुधा-धार, विद्युद्द्युति !"
शकुनि-वचन सुन दुर्योधन-मन मधुकरपन मे हुलसा।
क्षुद्र श्वान मधुकलश- स्वप्न मे जीभ फेरता हो ज्यो,
'एवमस्तु' बोला दुर्योधन मुद-मन। सन्नय झुलसा।

४. चीरहरण

(५२) पण : द्रौपदी

पाचाल-देश की फलित-सुकृति वह, सजीवनी सुधा वह,
उत्कृष्ट कलाकृति, आद्य कल्पना, ज्योति-रूप करुणा वह,
धरती की श्री, निधि असधेय एव अपूर्व, तडिदाकृति,
गतिमती कुसुमवल्लरी भव्य वह सुखद स्वप्न की सस्मृति,
वह प्रणयमूर्ति, आनद-राशि, वह सचिति सुन्दरता की
वह पाडव-प्राणप्रिया पाचाली, पण-भर द्यूत-सभा की
थी बना दी गई। आर्य युधिष्ठिर ने पापिष्ठ-सभा मे
रख दिया दाँव पर उसे, धकेला दुष्टो की दष्ट्रा मे!

× × ×

कही उपानच्चर्म के लिए लालित लालो का वध
किया किसी ने? सती द्रौपदी पण हो. सभव वीवध?
धूर्त शकुनि ने पाशक अवहित फेका द्यूत प्रगत कर।
वोला. 'यह लो?'—और लिया माया-पाशक के वल पर।

(५४)[१] दुर्योधन-वचन

दुर्योधन बढ गले मिला शकुनि से, हृष्ट हो बोला
"प्रिय मामा, संताप मिटाया तुमने बड़ा फफोला!
दूर किया अपमान, कसक मेटी जो साल रही थी,
प्रिय मामा, इस नारी के उपहासो ने जो दी थी।
अधोनम्य ही है अब तो यह गर्वित पाण्डव-दारा!
प्रिय मामा, कैसे भूलूंगा यह उपकार तुम्हारा?

ऋण से उऋण नही हो सकता हूँ मैं कभी कृपा के!
प्रिय मामा, तुमने है प्राण बचाये प्यास बुझाके!
बलि दूंगा, प्रार्थना करूँगा सदा तुम्हारे हित मैं!
प्रिय मामा, चिर द्वेष मिटा, चिंता से हुआ रहित मैं!
निष्कटक सुख का भविष्य विस्तृत है मेरे सम्मुख!
प्रिय मामा, वर्णनातीत, जो तुमने दिया मुझे सुख!"

उछल-उछल दुर्योधन बकता रहा हर्ष मे विह्वल,
मानो उछल रहा हो, कूद रहा हो उल्लासाचल।
झूम-झूम तालियाँ बजाता रहा। सभा मे ऊधम
रहा। सभावर्ती-जन-चेष्टाकन मे भाषा अक्षम!

× × ×

---

१ अनतभुक्त उपशीर्षक '(५३) द्रौपदी के वश मे आने से कौरवो का हर्षोल्लास'।

(५६)[1] दुर्योधन-वचन विदुर के प्रति

आर्य विदुर से त्वरा-त्वरित स्वर मे बोला दुर्योधन
"विदुर, सोचते क्या हो ? अत.पुर मे पहुँच इसी क्षण
उस सुभ्रू, पांचालराज की प्राणसमा दुहिता से,
दासी जो बन गई हमारी अक्षवती-जितता से,
सभा-घटित वृत्तात कहो। फिर उसे यहाँ पर लाओ।
कल के जेठ आज के स्वामी का सदेश सुनाओ
कहो कि सेवा-हेतु तुम्हारे नव-स्वामी दुर्योधन
राजसभा-मडप मे तुम्हे तलब करते हैं फौरन् !"

(५७) विदुर का उत्तर

दारुण दुर्योधन-वचन श्रवण कर अति-सकोप
हो आर्य विदुर यो बोल उठे "शातम् पापम् !
मत बनो मूर्ख ! तुम अकथनीय अनुचित बाते
कह गये बहुत हे पुत्र !—जानते नही, वत्स,
कितना अनिष्ट इससे हो सकता, इसीलिए
तुमने मुँह से इन शब्दो को उच्चरित किया !
नन्हा मृगशावक ज्यो मृगेंद्र पर झपट पडे,
भिड जाय नाग से ज्यो कोई मडूक-बाल,

---

[1] अनतर्मुक्त उपशीर्षक '(५५) दुर्योधन के द्रौपदी को भरी सभा मे तलब करने से जगत् मे घटित अनिष्ट'।

क्यो पाडु-सुतो का कोपानल भडकाते हो ?
क्यो करते हो अपमान सती पाचाली का ?
दे रहा मत्रणा मैं वह, जो हित की होगी,
अब और किसीमे मुझे नही कुछ कहना है.

यदि आज नही तो कल पाडव वदला लेंगे,
तव आहत होकर वत्स, धरा पर लोटोगे,
क्यो अपने पाँवो आप कुल्हाडी मार रहे ?—
क्या अपना सत्यानाश कराके दम लोगे ?
कैसी निष्ठुरता है ? क्या सुनी न वेन - कथा ?
उसने सतो के कोमल हृदय दुखाये थे,
कीडे-सा कुचला गया नीचतम पापी वह !
कहना हृद्दाहक वचन कहाँ का शील, कहो ?
उससे तो केवल मर्मघात ही सभव है !
दुर्जन के मुख मे सहज निकल जाता, परतु
उनके मन से न कदापि, जिन्हे आहत करता !

यह पाप भयकर है, इसमे न पडो राजन् !
होओ न भ्रष्ट हे पुत्र ! मान भी जाओ अब
कुरुनदन, फिर कहता हूँ दुखा दुखी का मन
सुख-शाति न मिलने की ! तुम लालच मे आकर
कर रहे भयकर अकरणीय। इससे अनिष्ट
होगा भीपणता मे अभूत-श्रुत-दृष्ट-पूर्व ?

लौटा दो सविनय और क्षमायाञ्चापूर्वक
पाडव को अक्षवतीजित पाडव का सरवस।
यह करो प्रार्थना भी उनसे अज्ञानजनित

अपराध तुम्हारे वे कृपया न रखे मन मे।
वे इद्रप्रस्थ को लौटे कुशल-क्षेम-पूर्वक।

यदि किया न अपने अपराधो का निराकरण
तुमने, तो है अनिवार्य महाभारत का रण!
अब भी यदि चेत न गये समय रहते राजन्,
तो नाश तुम्हारा ध्रुव है!"—ये हित-भरे वचन
कटु लगे विदुर के, गरज पडा शठ दुर्योधन

"बस करो, तुम्हारी तो लत-सी है यह असहन,—
जब भी देखो मुझको दुतकारा करते हो!
पर आज तुम्हारी एक न सुनने का, जो हो!
कोई है?—कौन?—अरे हाँ, सूत?—अभी जाओ
अत पुर मे, मुझ भारतेश की आज्ञा से
पाडव-पत्नी को राज-सभा मे ले आओ!"

तत्क्षण अत पुर गया सूत, पाचाली से
अतिशोकाविष्ट स्वरो मे यो बोला विनीत
"जय देवि, तुम्हारे चरणो मे सविनय प्रणाम!
माँ, करो धर्म की रक्षा!—आर्य युधिष्ठिर ने

मातुलवत् मातुल आर्य शकुनि से द्यूत खेल
अपना सर्वस्व लगाकर पण पर गँवा दिया
धन, राज-पाट, सोदर, स्वतत्रता और स्वय
अपने को भी जब हार चुके तब देवी को.
हा, कैसे कहूँ?— कही जाती मुझसे न बात?
वह अतिम पण भी आर्य युधिष्ठिर हार गये!

फल विकट हुआ !— उस भरी सभा में आप, देवि,
लाई जायें, इस राजाज्ञा के पालन का
कटुतम कर्त्तव्य निभाने निपट अभागा मैं
अंत पुर मे आया हूँ ! रक्षा करो, देवि !"

पाचाली बोली, "कौन ?—कौन कहता है रे ?
किसकी आज्ञा है, मुझे घसीटा जाय वहाँ ?
क्या अक्षदेवियो की परिषद् मे जाती है
कुलवती क्षत्रकुल महिलाएँ ?— किसकी आज्ञा
पाकर तुम मुझे बुलाने आये हो ?— कह दो !

उत्तर मे बोला सूत " देवि, यह आज्ञा तो
है स्वय महाराजाधिराज दुर्योधन की।"
पाचाली बोली, "ठीक !—पूछकर आना तो
अपने स्वामी से भला कि मेरे स्वामी ने
जब अक्ष-समर्थ शकुनि के हाथो खोयी थी
अपनी सम्मान-प्रतिष्ठा, तब पहले पण मे
अपने को रखा कि मुझको रखा उन्होने था ?
ऐसा तो नही हुआ कि विजित होकर पहले
पीछे से मेरे स्वामी मुझको हारे हो ?
जाओ, मेरा यह प्रश्न पूछ दुर्योधन से
इसका उत्तर लाकर फिर मुझसे बात करो !"

जब चला गया वह, द्रुपदसुता एकात बैठ
हतमुखश्री, अति-व्याकुल अति-व्यथित हुई, उनके
नयनो से आँसू उमड चले, —कँपकँपा उठा
अप्रिय आशकाओ से उनका हृदयस्थल,

सहमी-सी थहराकर वह ढह-सी पड़ी, यथा
साक्षात् भूत को देख भीत हो शिशु कोई।

× × ×

(६०)[१] दुर्योधन-वचन

सुन सूत-निवेदित द्रुपदसुता-संदिष्ट वचन,
बोला अहिलाछन-लांछित-केतन दुर्योधन
"अच्छा तो, आयी नहीं सूत के कहने से ?
यह भीरु सूत भी भीम-भीत रीता लौटा ?।
अब तो यह काम तुम्हींसे होगा दुश्शासन !
मेरे छोटे भैया, तुम लाओ पांचाली।"

---

[१] अनंतरमुक्त उपशीर्षक '(५८) दुर्योधन-वचन सूत के प्रति' और '(५९) द्रौपदी का तर्क'।

५. शपथ

(६१) दुश्शासनका द्रौपदीको सभामे लाना

दुर्योधन-वचन श्रवण कर हर्षित दुश्शासन
तत्क्षण ही ताड गया अपने अग्रज का मन।
वह दुश्शासन भी—(उसका थोडा सा परिचय
दे दिया जाय तो प्रासगिक होगा निश्चय)—

दुष्टता धूर्त्तता मे अग्रज से बढ-चढ कर
था, मद्य-मास का प्रेमी था, उसके भीतर
था ज्ञान बुद्धि इत्यादिक का लवलेश नही,
कपित अमित्र रहते, पर जिनसे द्वेष नही
वे मित्र-स्वजन भी रहते थे उससे बचकर,
मानो उसका सपर्क भूत का हो चक्कर

यद्यपि बाघो का-सा बल था उसके तन मे,
तिल-मात्र विवेक न था तथापि उसके मन मे,
था अमित गर्वमद, बिना पिये ही मत्त सतत
रहता था, नानाविध कुकर्म मे सदा निरत
दूषित करता था शक्ति, अत शिवशक्ति-सरणि
उसकी अनजानी रही सदा, सुख-शाति-करण

संत्यानाशी केवल अधर्म मे बहता था,
सत्सगति से तो सदा दूर ही रहता था,
अधिपति अग्रज-व्यतिरिक्त सकल भूजन-व्रजका
अपने को माना करता था वह, अग्रज का
आदेश एक भी नही टालता था, परतु
अन्यथा शील-सौजन्य-शून्य था निठुर जतु,

यह जान-बूझकर ही अग्रज ने शब्दस्वल्प
आज्ञा दी 'लाओ पाचाली,'—वह व्याघ्रकल्प
गुर्राया, बोला . 'जो आज्ञा, मैं अभी चला !'
पहुँचा उस भव्य भवन मे जहाँ दुखविह्वला
पाचाली सती खडी थी, अवसन्नता मूर्त्त !
पग ठीक उसी की ओर बढाने लगा धूर्त !

स्पर्शाशंकाभीता वह दूर लगी हटने
'रुक जाऽव् वहीपर'—गरज कहा दुश्शासन ने।
उस नीच कापुरुष के उत्तर मे द्रुपदसुता
रुक बोली,—गजदृढोक्ति पिकी-निर्भीक-रुता,—

"यह कान खोलकर सुन ले रे शठ पृथ्वीपर
सशरीर विराजित मानो सुरपुर के निर्जर
जो पाडव है, उनकी पत्नी मै पतिधन्या
एव पाचाल - नरेश द्रुपद की मैं कन्या,—
यह बात न भूला कोई भी मेरे सम्मुख,
कह रहा असयत वचन,—होश मे है दुर्मुख ?
अविलंब बता दे अपने आने का कारण,
अविलब बता दे और निकल जा कुलदूषण !"

(६२) दुश्शासन के हाथो द्रौपदी की अवमानना

दुश्शासन बोला "न तो पाण्डवो की भार्या
तुम रही, न ही अब द्रुपदसुता ही हो आर्या !

तुम तो मेरे अग्रज भूतल - राजाधिराज
दुर्योधन की लोडी हो, दासी-मात्र आज।
महती परिषद् के बीच हमारे प्रिय मामा
शकुनि से द्यूत खेलते हुए अपनी वामा
तुमको पण रखा तुम्हारे तब-तक-के- पतिने,
पण हार गया अब कोई कैसे तुम्हे गिने
उसकी पत्नी ?—अब अक्षवतीजित दासी भर
तुम हो, अब हुए तुम्हारे स्वामी अग्रजवर
राजा दुर्योधन। मैं उनकी आज्ञा पाकर
आया हूँ लेने तुम्हे। यहाँ से ले जाकर
मैं भरी सभा मे पेश करूँगा तुम्हे, चलो।
अब आगे बात न एक करो, कर भले मलो।
कापुरुष सूत के हाथो भेजी जो पृच्छा
तुमने, उसको सुनने की मुझे नही इच्छा !"

× × ×

हह्-हह्-हह्' करता अट्टहास शठ दुश्शासन
पहुँचा पाचाली के समीप। धर दीर्घ केश
वह लगा खीचने बलपूर्वक। पाडव-देवी
चित्कार कर गिरी मूर्च्छित हो, टँग गये प्राण।
पर नीच न माना, आयत केशकलाप धरे
वह उन्हे घसीटे चला। बाट मे लोग जुटे
वह आततायिता देख रहे थे टुकुर-टुकुर !

वे अकर्मण्य नागरिक !—उन्हे क्या कहा जाय ?
वे असाहसी कुत्ते !— आगे वढ पशुप्रवृत्त
दुश्शासन को घर पटक घरापर रौद-रौंद,
उस देवी को अक्षत अत पुर ला न सके !
वे अटल पेट-से खडे-खडे ताकते रहे !
बिलखे भी,—पर वह अवला-रुदन निरर्थक था !
सुदरी सती को अस्त - व्यस्त कर दुष्ट कूर
धर केश घसीटे लिये वहाँ पर जा पहुँचा,
थी जहाँ पतनपथी पृथ्वीपति कौरव की
वह धर्म-भ्रष्ट परिषद्। परिषद् मे जैसे ही
पहुँची पाचाली, रुदन कर उठी धाड मार !

(६३) भरी सभा से द्रौपदी की न्याय की माँग

द्रौपदी बिलख कर करने लगी विलाप "हाय !
रे हाय भाग्य ! मैं निस्सहाय ! मै निस्सहाय !
हे प्राणनाथ - पचायतनी, मैं निस्सहाय !
साक्षी समक्ष रख वैदिकाग्नि, कर पाणि-ग्रहण
क्या इसीलिए करना था सप्तपदीका प्रण ?
इसलिए कि मुझको आज धूर्त ये पापी जन
कलुषित-अपमानित करे ?" महातर्दाह - वचन
सुन पार्थ परतप वली भीम की अर्थमुखर
चितवन अपनी-अपनी उन तुग भुजाओ पर
जा पडी, निरतर फडक रही थी जो द्रुतलय।
सहदेव-नकुल के साथ युधिष्ठिर व्यथितहृदय
सिर अवनत किये खडे थे। बोली पाचाली.

"इस महती परिषद् मे कितने महिमाशाली
बहु-श्रुत बहुज्ञ विद्वान्, विप्र तप-यज्ञ वीर,
कितने ही धर्मायमतत्त्वमर्मज्ञ धीर,
सम्मान्य पूज्य कितने वयस्क जन है। कराल
हो उठा न उनका इस अनीति पर रोष-ज्वाल ?
है धर्मबद्ध मेरे प्रवीर पति !—हाय कष्ट !
क्या दोष उन्हे दूँ ? पर धूर्तो, हो बुद्धि भ्रष्ट
मुझको घसीट कर भरी सभा मे ला करके
उपहास कर रहे हो सब भाँति सता करके !
क्या नही किसी मे शेष रहा इतना साहस,
तुमको ललकार कहे कि हो गई अति, बस बस !
हा हा, अब मैं क्या करूँ ?"

द्रुपदजा का विलपन,
तडिदुग्र कौंधती-सी उसकी धारल चितवन
पाडव - हृदयो को रही वेधती। दुश्शासन
यह देख कि जडवत् मूक बने सब परिषज्जन
हत-श्री बैठे है, चिल्लाया उन्मत्त - प्राय
'चुप दासी !'—एव अन्य अनेक अभद्र-न्याय
अपशब्द सुनाये। सुनकर हँसने लगे कर्ण !
शकुनि ने वाहवाही की। दर्शक थे विवर्ण !

(६५)[1] पांचाली की प्रार्थना

"क्या नहीं तुम्हारे भार्याएँ, भगिनियाँ नहीं ?
कल्याण न होगा,—नारी का अभिशाप न लो।
कर जोड़ रही हूँ,—दया करो कुछ, कृपा करो।"
शरविद्ध मृगी सी तड़प बिलखती पांचाली
बिखराये भूपर कुसुम-सुकोमल कच-कलाप,
रोती ही गई। उधर पापी दुश्शासन ने
दुर्वचन अमर्यादित भाषा में अनिश कहे।
दारुणरोदनरत, अस्त-व्यस्त वस्त्रों सिमटी
द्रौपदी दीन थी, किंतु निपट पशु बना हुआ
दुश्शासन फिर भी बढ़ा खींचने केश पकड़;
तब असह क्रोध एवं दुख सहा न गया, भीम
कसमसा उठे, जब उनसे रहा न गया, विवश
आक्रोश उबलकर अग्रज के प्रति फूट पड़ा।

(६६) भीम-वचन

× × ×

क्या दाँव रखा भैया ?!—पण पर यह किसे रखा ?
महिलाकुलदीपक को ? प्रेमल सुंदरता को ?

× × ×

भैया जब राज्य गँवाया, हमने सहन किया!
जब स्वयं हमें ही दास बनाया, सहन किया!

× × ×

[1] अनतर्भुक्त उपशीर्षक : '(६५) भीष्म वचन'।

अब यह तो सह्रा नहो जाता !—सहदेव, सुनो !
अगारे लाओ, हाथ जला दो अग्रज के !—
इन हाथो ने ही खो दी अपनी ज्वालशिखा !

× × ×

(६७)अर्जुन - वचन

यह भीम-देशना सुन सहदेव - समुद्दशित,
कुछ तमक धनजय बोले "भैया भीम, कहो,
करते हो कैसी बात ? कहां ? किसके आगे ?
सच-सच बतलाना, यह-सब मन से कहते हो ?
रोषानल झुलसा रहा तुम्हारी न्यायबुद्धि !
तुम तभी चक्रवर्ती अग्रजवर आर्य-श्रेष्ठ
इन धर्मराज को बुरा - भला कहते हो यो !
पाचाली को पणपर रखना अपराध, किन्तु
यह तो सच नही कि यह अपराध उन्ही का है !

यह तो सुविदित ही होगा तुमको अक्षवती
धर्मी जीवन को प्राय लील लिया करती,
पर 'जीत अत मे सदा सत्य की होती है'—
यह सत्य चिरतन हृदयगम कर ले जग-जन,
इसके निमित्त हमको निमित्त-भर बना-बना
यह खेल स्वय ही खेल रहे हैं भाग्यदेव !

चुपचाप देखते चले चलो वे अभी और
क्या - क्या हमसे आगे - आगे करवाते है !

धीरज धरना है हमे। आज हम बदी है,
इसलिए धैर्य ही धर्म हमारा है। वह दिन
निश्चय ही आयेगा, जब धर्म जयी होगा !
गाडीव पास मे है अपने, चिंता क्यो हो ?'

(७०)[१] द्रौपदी का कृष्ण को गुहराना

करने को भरी सभा मे 'माँ' का चीरहरण,
उद्यत दुश्शासन उठकर उधर बढा जिस क्षण,
चित्कार कर उठे विदुर : 'हाय भगवान्, हाय !'
तत्क्षण मूर्च्छित हो कटे पेड-से निस्सहाय
गिर पडे। परतु प्रमत्त बना-सा दुश्शासन
परमावेक्षापूर्वक करने लग पडा हरण
द्रौपदी-चीर का।

निरवलब 'माँ' निश्चेतन,
अंतस्थ ज्योति मे लीन, जगत्-सुधि-विस्मृत-मन,
एकात्म हुई 'हरि - हरि - हरि' जपने लगी "शरण
दो शरण कृष्ण, मैं शरण तुम्हारी परमात्मन् !
जल मे करके गज-गाह ग्राह का प्राण-हरण,
ब्रजराज, तुम्हीने लाज रखी, गजराज-शरण !
घनश्याम, तुम्हीने कालिय के फण पर नर्त्तन
था किया। विश्वरूपी, विराट्, विभु, हे भगवन्,
अविवेच्य तत्व तुम वेद-वेद्य ! प्रभु, शरण शरण !

× × ×

---

[१] अनतर्भुक्त उपशीर्षक '(६८) विकर्ण-वचन,' और '(६९) कर्ण का प्रत्युत्तर'।

तुम हो अनादि, तुम हो अनत ! तुम, हे कण्णन्,
हो ज्ञानातीत अलौकिक तत्व ! जगल्लोचन—
लोचना ज्योति के भी ज्योतिर्मय आदि - करण !
शरणागत हूँ, मेरी विनती सुन लो, कण्णन् !
उतरो अनत से अतस्तल मे, गरुडासन,
हो लो प्रविष्ट, तेजोमय ज्योतिर्मय कण्णन् !

× × ×

मेरे मन के आलोक, जगत्राता कण्णन् !
त्राणार्थ शरण हैं, नाथ, तुम्हारे कमल-चरण !
शरणागत मैं ! हरि हरि हरि हरि !" साजलिवधन
थी पाचाली सुध - बुध भूली, हरिमयचेतन।

हरि ने भी सुन ली।
ज्यो-ज्यो दुर्जन दुश्शासन
हठ कर उधेडता गया चीर, त्यो त्यो वर्द्धन
होता ही गया वसन का ! कृष्ण-कृपा कारण !
शठ-दुख, सुकृती-यश के समान बढ चला वसन !
नारी-मन को करुणा-समान बढ चला वसन !
उत्ताल महासागर-तरग सा बढा वसन !
बढता ही रहा अपरिमित अगणितवर्ण वसन।

× × ×

हर्षित सुर 'भारतशक्ति जयति जय' उच्चारण
कर अतरिक्ष से करने लगे सुमन - वर्षण।
श्रद्धाजलिवधन - सहित आर्य शातनुनदन
उठ खडे हो गये छोड - छाड अपना आसन।

कर जोड सभा के क्षत्रवीर बोले सविनय
'जय श्रो३म् शक्ति! जय श्रो३म् शक्ति
जय जय, जय जय!'

तब राजधर्म से विच्युत अहिलाछ्नकेतन
अवनतमस्तक हो रहा विगतमद दुर्योधन!

(७१) भीम की शपथ

उठे भीम। बोले :"लेता हूँ मैं अमरो की शपथ,
पराशक्ति की, पद्मनाभ-पदपद्मवरो की शपथ,
कुलदैवत श्रीकात कृष्ण के श्रीचरणो की शपथ,
मदनदहननयनाग्नि-कालजित्-शिव-चरणो की शपथ :

धृष्ट उक्ति पावक-पावन पाचाली से जिसने की
'आओ, मेरी गोद बसो,' उस विगतलज्ज पिल्ले की,
उस कापुरुष विगतपौरुष दुर्योधन के बच्चे की,
रण मे अपने भुजबल से गजना न यदि मैंने की,
उसको निष्क्रिय निष्प्रभ करके इन्ही नृपो के सम्मुख
चूर्णजघ करके यदि मारा नही, और यदि दुर्मुख
दुश्शासन की भुजा न काटी, तो मैं भीम नही हूँ!
उसकी रुधिरधार-मदिरा पीऊँगा सरुचि, व्रती हूँ!

यह सब होना है!—इसको समझो गर्वोक्ति न मेरी।
यह अमोघ देवोक्ति! पराशक्ति हे, कृपा हो तेरी!

(७२) अर्जुन की शपथ

उठे पार्थ। बोले "अपने प्रिय मित्र कृष्ण की शपथ,
पुण्यतीर्थ भगवान् शुभ्रयश महाविष्णु की शपथ,
आयतनयना द्रुपदसुता के नयनचाप की शपथ,
और चण्ड गाडीव चाप अरि-प्राण-ताप की शपथ

अर्जुन नहीं, किया यदि रण मे पापी कर्ण न निहत !
समरकला का चमत्कार देखोगे सब हे जगत् !"

(७३) पांचाली की शपथ

देवी द्रुपदसुता ने भी ली शपथ
"ओ३म् देवी पराशक्ति की शपथ,—
महापातकी दुश्शासन का रुधिर,
अभिसपाती दुर्योधन का रुधिर,
लेकर जब तक सिक्त न कर लूं अलक,
तब तक अपने कभी न बांधूं अलक !
शोणित-अक्षण के उपरान्त स-तैल
स्नान असत्-स्पर्शनाशौच का मैल
जब काटेगा, तभी केशविन्यास
सरुचि करूंगी सालकरण-सुवास !"

तभी दैववाणी का गर्जन 'ओ३म्'
घहराया, घहराया घन-घन 'ओ३म्!'

भूमि कँपी, बह चला प्रभजन घोर,
रज-धूसरित हुआ नभ चारो ओर !
पच तत्त्व ने साक्ष्य दिया प्रत्यक्ष
'आज धर्म का पक्ष हमारा पक्ष !'

कथा समापन किया, शुभानुध्यान
यही हमारा जग का हो कल्याण,
सदा बढे सुख ही सुख, मिटे विकार,
सुख ही सुख मे सदा रमे ससार !